एम.ए.एच.आई. –04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. - 04

ऐतिहासिक चिन्तन – 5

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-5

इकाई संख्या

इकाई 19	
भारतीय इतिहास लेखन में अधुनातन वृत्तियाँ-परम्परावादी, सम्प्रदायवादी, राष्ट्रवादी तथा मार्क्सवादी	5–14
इकाई 20	
भारतीय लोक साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व	15–22
इकाई 21	
इतिहास में तथ्य	23–34
इकाई 22	
इतिहास में वस्तुनिष्ठता	35–45
इकाई 23	
इतिहास में कारण की अवधारणा	46–61

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार

निदेशक

नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली।

प्रो. बी.आर. ग्रोवर

पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।

प्रो. एस.पी. गुप्ता

इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़।

प्रो. जे.पी. मिश्रा

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू वि.वि, वाराणसी।

प्रो. के.एस. गुप्ता

पूर्व विभागाध्यक्ष, मोहन लाल सुखाड़िया वि.वि, उदयपुर

डा. बी.के. शर्मा

इतिहास विभाग कोटा खुला वि.वि, कोटा।

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा

इतिहास विभाग, कोटा खुला वि.वि, कोटा।

डा. याकूब अली खान

इतिहास विभाग कोटा खुला वि.वि, कोटा।

पाठ्यक्रम निर्माण दल

प्रो. सीताराम सिंह

इतिहास विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

डा. ललित पाण्डेय

सहायक निदेशक, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।

डा. गोपाल व्यास

इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय,डूंगरपुर।

डा. विजय कुमार

इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सिरोही।

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(**अकादमिक**)	प्रभारी अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - Oct 2012 MAHI-04/ISBN No.-13/978-81-8496-263-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई 19

भारतीय इतिहास लेखन में अधुनातन प्रवृत्तियाँ–परम्परावादी, सम्प्रदायवादी, राष्ट्रवादी तथा मार्क्सवादी

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 भारतीय इतिहास लेखन में अधुनातन प्रवृत्तियाँ

19.3 परम्परावादी इतिहास लेखन

19.4 सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन

19.5 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन

19.6 मार्क्सवादी इतिहास लेखन

19.7 सारांश

19.8 बोध प्रश्न और उनके उत्तर

19.0 उद्देश्य

- इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि भारत वर्ष में अधुनातन इतिहास लेखन की प्रवृत्तियाँ क्या–क्या हैं?
- परम्परावादी इतिहास लेखन क्या है और इसकी स्थिति क्या है?
- सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन किस तरह विकसित हुआ और इसकी वर्तमान स्थिति क्या है?
- राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अभी स्वरूप क्या है और इसमें और पूर्व राष्ट्र वादी इतिहास लेखन में क्या अंतर है?
- मार्क्सवादी इतिहास लेखन से भारतीय मार्क्सवादी इतिहास लेखन में क्या विशेषता है?

19.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम पड़ चुके हैं कि किस तरह यूरोपीय इतिहास लेखकों की पुस्तकों में प्राचीन भारतीय जीवन और संस्कृति पर उपेक्षापूर्ण दृष्टि रखने और कीचड़ उछालने का आधुनिक रूप से शिक्षित भारतीय विद्वानों के मन पर कितना विपरीत असर हुआ और उन्होंने पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव में किस तरह इस अनुचित प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया में उग्र राष्ट्र वादी भावनाओं को जन्म दिया । उग्र राष्ट्र वाद की लहर में किस तरह भारतीय विद्वान अति दृढ़ संकल्प के साथ प्रतिक्रियावादी पश्चिमी विचारों के प्रत्युत्तर में भारतीय जीवन की श्रेष्ठता को बढ़ा–चढ़ा कर कहने लगे । अब हम यह देखेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उस दिशा में क्या परिवर्तन हुए । आर्थिक राष्ट्रवाद के समर्थकों में आर० सी० दत्त और दादाभाई नौरोजी ने जो अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये और किस तरह अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नैतिक नींव की जड़ को हिला दिया यह भी हम देख चुके हैं । यहाँ हम यह पायेंगे कि भारतीय इतिहास लेखन धीरे–धीरे अधिक संतुलित हो गया, किन्तु यह बात राष्ट्रीय इतिहास लेखन और परंपरावादी इतिहास पर ही लागू होती है । संप्रदायवादी

इतिहास लेखन और मार्क्सवादी इतिहास लेखन में तो नई शक्ति दृष्टिगोचर होती है । इन सभी विषयों पर हम यहाँ विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

19.2 भारतीय इतिहास लेखन में अधुनातन प्रवृत्तियाँ

जैसे–जैसे भारत अधिक से अधिक शिक्षित होता गया उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों की संख्या बढ़ने लगी तथा स्वायत शासन की संभावनायें बढ़ने लगीं । वैसे ही वैसे इस विशाल देश का प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक जन समुदाय और प्रत्येक वर्ग अपनी अस्मिता की खोज में लीन हो गया।

स्पष्ट है कि ये सभी तत्व अतीत में अपने अस्तित्व का औचित्य ढूँढ़ने लगे और फलत: इतिहास की व्याख्या अपने अपने दृष्टिकोण से करने लगे । पाठ्य पुस्तकें भी पहले की अपेक्षा अब अधिक खोजपूर्ण और तथ्यपूर्ण होने लगीं । किन्तु इन सभी प्रवृत्तियों के बीज हमें इस युग की पूर्व–पीठिका में ही मिलेंगे ।

19.3 परम्परावादी इतिहास लेखन

इस प्रयास में हम सबसे पहले भारत में परम्परावादी इतिहास लेखन पर विचार करेंगे । पूर्व में हम यूरोपीय इतिहास लेखन पर विचार कर चुके हैं कि यूरोप की तुलना में भारत में इतिहास लेखन की परम्परा बहुत ही दुर्बल थी । यों उन्नीसवीं शताब्दी में पूरे यूरोप में भी इतिहास लेखन की विभिन्न प्रवृत्तियों पर बड़ा संघर्ष था । किन्तु वस्तुनिष्ठता और तथ्यों के अभिलेखागारों के आधार पर निरूपण के दृष्टिकोण से जर्मन इतिहासकार रैके का स्थान सर्वोपरि है । प्राय: उसे प्रथम आधुनिक इतिहासकार कहा जाता है । उसकी गंभीर विद्वता का और शिक्षण विधि का गहरा प्रभाव केवल जर्मनी के शैक्षिक जीवन पर ही नहीं पड़ा, बल्कि यूरोप और अमेरिका की शिक्षा पर थी पड़ा । भारतीय शैक्षिक जीवन पर इग्लैण्ड की छाया के फलस्वरूप भारतीय इतिहास लेखन पर भी रैके का प्रभाव पड़ा । उसने ऐतिहासिक भ्रांतियों के विरुद्ध अनवरत संघर्ष किया । उसने आश्चर्यजनक तटस्थता, अतिदुर्लभ वस्तुनिष्ठता और सच्चाई के लिए घोर आदर का परिचय दिया । उसका मिथक से सत्य की ओर अधिक आकर्षण था । जिस तरह से घटनायें घटी उसी रूप से उनको स्थापित करने का साधन स्थापित किया । उसके उदाहरण और शिक्षा से किसी के लिए तत्कालीन इतिहास लेखन प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथन और अभिलेखागार में साध्य तैयार किये हुए सच्चे दस्तावेज के बिना असंभव था । वह किसी भी प्रचलित इतिहास लेखन के सिद्धान्त जैसे हीगेलवाद, उदारवाद, रोमानीवाद और प्रत्यक्षवाद (पोजिटिभिज्म) के अपने रास्ते से मुकरने वाला नहीं था । उसने राष्ट्रभक्ति की विकृतियों का खुलकर विरोध किया । वह प्रथम व्यक्ति था जिसने स्रोतों के आलोचनात्मक अध्ययन की विधि का प्रयोग किया । उसने ऐतिहासिक स्रोतों की सूक्ष्म आलोचना के आधार पर इतिहास ले खन की नई शैली स्थापित की जिससे आलोचनात्मक आधुनिक इतिहास लेखन की प्रथा का उद्भव हुआ । रैके ने सिद्ध कर दिया कि स्त्रोत रूप में इतिहास की सामान्य पुस्तकें करीब करीब बेकार थीं, और इस तरह के अनुपयोगी तथ्यों को रोकने के लिए इतिहासकार को अभिलेखागारों और दस्तावेजों का ही व्यवहार करना चाहिए ।

ऐतिहासिक घटनाएँ जिस तरह से घटी थीं, उसी तरह से उनको समझने के उद्देश्य से वस्तुनिष्ठ अनुसंधान ही उसका लक्ष्य था । इस तरह के लक्ष्य की प्राप्ति में किसी तरह के पूर्वाग्रह अथवा मूल्यांकन की आवश्यकता नहीं थी । रैके की कृतियों में राजनीतिक इतिहास ही

शीर्ष स्थान पर था जबकि सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास पृष्ठभूमि में ही थे । रैके की दृष्टि में इतिहास का कोई दूसरा उद्देश्य नहीं था बल्कि इतिहास स्वयं अपना उद्देश्य था ।

रैके का विश्वास था कि समकालीनों के द्वारा लिखे गये इतिहास ग्रंथों का श्रोत के रूप में व्यवहार करना दोषपूर्ण है, क्योंकि इसमें वैयक्तिक और राजनीतिक द्वेष हो सकते थे, और इसलिए इनका व्यवहार सावधानी से करना चाहिए । अतीत पर लिखे गये इतिहास ग्रंथों को स्रोत के रूप में स्वीकार करने से अच्छा है कि राज्य के मौलिक दस्तावेज़, दैन्दिनी, पत्राचार, सरकारी रिपोर्ट और दूसरे मौलिक चीजों का व्यवहार करे, अर्थात् ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए दस्तावेज़ ही स्त्रोत हों । वास्तव में रैके राजनैतिक और कूटनीतिक इतिहासकार हैं । भारतवर्ष में जो पाठ्य–पुस्तकें लिखी गयी थीं वे कुछ इसी आधार पर थीं और बहुत दिनों तक इतिहास की पाठ्य–पुस्तकें भारतीय महाविद्यालयों में इसी तरह की रहीं । रैके के आदेशों के अनुसार इतिहास लिखने वालों को जो उग्र राष्ट्रवाद की धारा में बह नहीं गये थे उन्होंने रैके की परम्परा को निभाया, जैसे आर० जी० भंडारकर ने । भंडारकर ने इतिहास लेखन में आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक सिद्धान्तों का व्यवहार किया । उन्होंने बहुत ही सावधानी से परीक्षण करने के बाद विभिन्न प्रकार के स्त्रोतों का व्यवहार किया और उससे तर्कसंगत और वैज्ञानिक उपसंहारों पर पहुँचे और उसे बहुत ही सहज और सुन्दर ढंग से व्यक्त किया । भंडारकर के लेखनों में पूर्ण ज्ञान, सर्वज्ञता, वस्तुनिष्ठता और खुलेपन का समिश्रण है । उनके लेखों में ब्रिटिश विरोधी भावनायें नहीं थीं बल्कि वे ब्रिटेन और जर्मनी के बड़े प्रशंसक थे । ऐतिहासिक तथ्यों को निरूपित करने की पश्चिमी विधि को उन्होंने सराहा। शायद वे पहले भारतीय थे जिन्होंने रैके के तरीके का भारतीय समस्याओं के समाधान में प्रयोग किया । उनका स्पष्ट कहना था कि अपने देश या नस्ल को उज्ज्वल दिखाने की प्रवृत्ति से इतिहासकारों को बचना चाहिए और उसमें दूसरे किसी देश या नस्ल के प्रति द्वेष की भावना भी नहीं रखनी चाहिए । उसका उद्देश्य केवल शुष्क सत्य होना चाहिए । इतिहासकारों को जज होना चाहिए न कि अधिवक्ता। वे न तो विन्सेंट स्मिथ के स्वर को पसंद करते थे जिसमें पश्चिमी चीजों की श्रेष्ठता को सिद्ध करने की बू आती थी, न उन भारतीय इतिहासकारों को पसंद करते थे जो पूर्वी चीजों के लिए श्रेष्ठता का दावा करते थे । स्रोंतों की जाँच पड़ताल में उन्होंने बड़ी ईमानदारी से आलोचनात्मक पद्धति का उपयोग किया और कुछ माने में तो प्राचीन भारत के यूरोपीय इतिहासकारों से भी वे अधिक आलोचनात्मक दृष्टि रखते थे । भंडारकर उन कुछ एक भारतीय इतिहासकारों में से हैं जिन्होंने सजगता से वस्तुनिष्ठ होने की कोशिश की और इसमें उनको सफलता मिली । निश्चित ही वे भारत के रैके थे ।

जिस समय राष्ट्रवाद के जोश से सारा वातावरण गूँज रहा था और इतिहासकार भारत के अतीत को अधिक उज्ज्वल चित्रित करने की प्रतिस्पर्धा कर रहे थे उस समय वस्तुनिष्ठता की आवाज सुनना कठिन था । लेकिन एच० सी० राय चौधरी एक अपवाद हैं, उनकी पुस्तक "प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास" बहुत दृष्टियों से मूल्यवान है । शुक सत्य को अपना अंतिम लक्ष्य बनाने में वे भंडारकर से भी आगे थे । तटस्थता के दृष्टिकोण से उनका इतिहास आदर्श था । केवल आँकडों को एकत्रित करने में ही नहीं बल्कि उन आँकडों की वस्तुनिष्ठ समीक्षा करने में भी।

इस श्रेणी में और भी बहुत से इतिहासकारों का नाम लिया जा सकता है । परन्तु भारत वर्ष के वर्तमान परिवेश में परम्परावादी इतिहास लेखन के लिए उपयुक्त अवसर नहीं मालूम पडता

है । नये भारत की बहुत सी समस्यायें हैं, साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा है और इसलिए अभी देश के सामने राष्ट्रीयता को और अधिक समेकित करने की आवश्यकता है । साम्प्रदायिक प्रवृत्तियाँ जो पहले दबी हुई थीं अब अधिक उभर कर सामने आ रही हैं और इसीलिए साम्प्रदायिक इतिहास लेखन की प्रवृत्ति भी बहुत स्पष्ट मालूम पड़ती है ।

19.4 सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन

इतिहास लेखन के क्षेत्र में भारत में हिन्दुओं के विपरीत मुसलमानों के इतिहास लेखन की अपनी परंपरा थी । यह दूसरी बात है कि इतिहास लेखन की पद्धति जो सदियों से मुसलमानों ने स्वीकार कर ली थी वह अपरिवर्तित रही । हालांकि इसी युग में पश्चिमी इतिहास लेखन पद्धति इस तरह के हलचल में थी कि वह लगभग हर दशक या दो दशक में बदल रही थी और पश्चिमी यूरोप के प्रत्येक भाग में एक नयी विचारधारा को विकसित कर रही थी । फलतः सम्पूर्ण उन्नीसवीं सदी को इतिहास की सदी के रूप में जाना गया जो पश्चिमी विद्वानों ने अपनी नयी अर्जित राजनीतिक अन्तर्दृष्टि को भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में लगाया और अपने सतत् परिवर्तनशील दर्शन के प्रकाश में मुसलमान शासन का लेखा–जोखा किया तो मुसलमान इससे अप्रभावित नहीं रह सके । फिर मुसलमानी–शासन पर ब्रिटिश इतिहासकारों ने अपने आक्रमण की तीव्रता उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में बढ़ा दी मुसलमान विद्वान भी युद्धभूमि में आ गये । फिर भी यह स्थिति बीसवीं शदी के तीसरे या दूसरे दशक तक नहीं रही । यद्यपि हिन्दू विद्वानों ने यूरोपीयन लेखकों द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले भाग में ही लगाये गये आरोपों को अस्वीकार ने की चुनौती को स्वीकार कर लिया, कुछ विशेष कारणों के चलते मुसलमान लेखक इस मैदान में तीस या चालीस वर्ष बाद में आये । भारत पर अंग्रेजों द्वारा विजय से हिन्दुओं से बहुत अधिक मुसलमानों का मनोबल नष्ट हो गया । भारत के मुसलमानों के लिए यह अप्रतिम व्यथा थी जिससे सदियों से बनायी हुई उनकी सारी चीज नष्ट हो गयी थी । राजनीतिक शक्ति के हास, आर्थिक व्यवस्था की हानि, प्रशासनिक कार्यों की कमी, सामाजिक गरिमा की क्षति और सांस्कृतिक अधोगति के कारण मुसलमान अति निराशा के गर्त में डूब गये । अधिक शक्तिशाली सैनिक कौशल और तोप के कारण युद्ध में मुसलमानों का मान–मर्दन हुआ, हर जगह पश्चिम की चतुराईपूर्ण राजनय के कारण लगभग सभी जगह वे अपने राजनीतिक अधिकार को खो बैठे, मुगल साम्राज्य अब अतीत की चीज हो गयी थी, अंग्रेजों के अंदर कुछ देशी शासक तो ब्रिटिश के अंदर पेंशन पानेवाले नबाव हो गये थे । जमीन की नयी बंदोवस्ती के कारण मुसलमान भूमि पर के अपने अधिकार से भी वंचित हो गये थे । राज्य के ऊँचे –ऊँचे पदों से वे अब महरूम हो गये थे । सैनिक की बहाली में ब्रिटिश रिकूटमेंट के तरीके से सेना में भी उनकी नियुक्ति का अवसर कम हो गया था । मैकॉले के पैनल कोड के कारण मुसलमानों का कानून देश से समाप्त हो गया था । इसके शैक्षणिक सुधारों के कारण पर्सियन भाषा भी अब पदच्युत हो गयी थी और इसका स्थान अंग्रेजी ने ले लिया था, मुसलमानों के स्वाभिमान उनकी अनुदारता उनके कट्टरपन उनकी आरामतलबी और उनके नेतापन के अभावपन के कारण वे अपने को नयी परिस्थिति में ढालने से और पश्चिमी कला और विज्ञान यांत्रिकी में अपने को सम्मिलित करने को लाचार थे । जहाँ हिन्दुओं ने राजा राममोहन राय के समय से ही अपने बीच सांस्कृतिक जागरण लाये थे मुसलमान लोग इस चोट से विचलित होकर अपनी संकीर्णता में घिर गये थे और मरते हुए व्यक्ति के रूप में अपने को भाग्य पर छोड़ दिया । राम मोहन राय के पचास वर्षों के बाद सर सैयद अहमद खाँ

ने मुसलमानों को नया जीवनदान दिया । दुनिया की वास्तविकता से उनका सामना कराया और उनको अंग्रेजों की तरह विरोधी नीति छोड़ने को मजबूर किया । उनको अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी कला और विज्ञान सीखने को मजबूर किया । इस तरह एक नये नैतिक उत्थान के लिए नया धर्मवाद भी दिया ।

फिर सैयद अहमद ने ही मुसलमानों को पश्चिम की ऐतिहासिक विद्वता से परिचय कराया । इस क्षेत्र में वे खुद अनुसंधानकर्त्ता थे और 1846 में इन्होंने "तारीखें हिन्दुस्तान" और 1847 में "जामेजम" की रचना की जो अमीर तैमूर से बहादुरशाह तक का मुगल इतिहास है । उनकी पुस्तक असारे सनादिद (1847) एक महान कृति थी जिसमें इन्होंने सम्पूर्ण मुस्लिम वास्तुकला का सर्वे क्षण किया था । यह वही कृति थी जिसने पश्चिमी विद्वानों द्वारा कला के इतिहास की पूर्व सूचना दी । सर सैयद का दृष्टिकोण आधुनिक था । इन्होंने इतिहास लेखन में पश्चिमी पद्धति का प्रयोग किया और वे अद्भुत विद्वान थे, जो धर्मशास्त्र, दर्शन, इतिहास और साहित्य में बड़े ही में धावी थे । समाज सुधारक के रूप में वे व्यावहारिक भी थे । एक शिक्षाविद के साथ राजनैतिक नेता भी थे । वे आधुनिक उर्दू गद्य के पिता थे और अलीगढ़ विचारधारा के संस्थापक भी थे । मुसलमानों के पुनरुद्धार के जनक थे । वे विलक्षण पुरुष थे । उनका हृदय बड़ा ही संवेदनशील तथा उनमें सुधार का उत्साह था । उनमें प्रगतिशील मस्तिष्क, पैनी, बुद्धि तथा संगठन की शक्ति थी । उन्होंने मुसलमानों में आशा, विश्वास और आदर का जीवन संचार किया जिसे वे (मुसलमान) खो चुके थे । उन्होंने अपने समान विचार वालों की मंडली तैयार की जिन्होंने उनके जलाये दीप को प्रज्ज्वलित रखा । जकाउल्ला के सहयोग से इन्होंने तारीखें हिन्दुस्तान नामक किताब लिखी। विविलिथे का इंडिका सीरीज का सम्पादन किया जिसमें मध्यकाल में लिखे गये फारसी इतिहास संग्रहित है । संक्षेप में सर सैयद अहमद ने एक बेहद टूटे हुए नाव की धारा के बीच में मरम्मत की और बढ़ती हुई मुख्य धारा के साथ नाव चलती रही । मुसलमानों के इतिहास बोध में एक नया दृष्टिकोण लाना था । इस समय सर सैयद के बहुत से सहयोगी थे जो नयी रोशनी देने के लिए काफी थे । वे भारत की दूर की घटनाओं में अधिक रुचि लेते थे । खुदावक्श की " हिस्ट्री ऑ फ इस्लामिक सिविलाइजेशन" और अमीर अली की " हिस्ट्री ऑफ स्क्रीणस और स्प्रिट ऑफ इस्लाम" में इस्लाम का सम्बन्ध कला, विज्ञान, साहित्य और दर्शन में भारत के बाहर से अधिक था । सर सैयद अहमद के नेतृत्व के बावजूद प्रथम विश्व युद्ध तक मुसलमान विज्ञान इस्लाम के विरुद्ध लगे पश्चिमी आरोपों को नकारने में अधिक रुचि लेते थे वनिस्पत भारत में मुसलमान शासन के विरुद्ध पश्चिमी अभियोगों का उत्तर देने में । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही इन्होंने भारत में मुस्लिम सम्प्रदाय के लिए राजनीतिक अस्त्र के रूप में इतिहास के महत्व को भारत की राजनीति में उनके पृथक पहचान के रूप में अनुभव किया ।

कुछ दूसरे ऐसे कारण भी थे जिनके कारण मुसलमानों ने इलियट व्हीलर, मेन और विन्सेंट स्मिथ जैसे विद्वानों के विचारों के विरुद्ध संघर्ष नहीं किया । सर सैयद अहमद ने उनके और अंग्रेजों के बीच कुछ समझौता स्थापित कर दिया था और यह तब तक रहा जब तक कि मुसलमानों का अपना घर ठीक न हो जाय । इसलिए इस समझौते के तुरंत बाद मुसलमान अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में नहीं खींच जाना चाहते थे क्योंकि अभी वे (अंग्रेजों) मुसलमानों को संतुष्ट करने की मन: स्थिति में थे । ताकि वे अपना राजनीतिक संतुलन सम्पति कर सके जो अब तक बहुत अधिक हिंदूओं के पक्ष में रहा था और जिसे वे अब साम्राज्यवादियों के स्वार्थ में

बदलने की आवश्यकता समझते थे। अब जबकि काँग्रेस के उग्रवादी और इतिहास के पुनरुत्थानवादी अंग्रेजों और मुसलमानों दोनों के विरुद्ध थे तो समय की पुकार यह थी कि मुसलमान अंग्रेजों की कटु आलोचना से दूर रहे । फलस्वरूप अब वे इस्लामी इतिहास के कम हानिकारक पक्ष का इतिहास लिखें जिससे भारत में मुसलमानों के दुखती रगों को सुकून पहुँचे । दूसरा एक पक्ष यह था कि सर सैयद जागरण के क्षेत्र में मुसलमानों से हिन्दुओं के बहुत आगे निकल जाने के कारण और उनके सर्वांगीण विकास के कारण चाहते थे कि मुसलमान तब तक संघर्ष का रास्ता न पकड़े जब तक मुसलमान प्रगति के मार्ग पर हिन्दुओं के समकक्ष नहीं हो जाये । इस सिलसिले में इतिहास लेखन के पक्ष में एक और कमी थी कि भारत में मुसलमानों के विस्तार के विरुद्ध हिन्दुओं का कठिन संघर्ष हुआ था उसको बहुत उजागर करने का प्रयास किया गया था । यह सत्य है कि तुर्क–अफगान–ईरानी और मुगल इन सभी आक्रमणकारियों ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए बहुत अधिक संघर्ष किया था किन्तु इस पक्ष पर अधिक जोर देना भविष्य के लिए हानिकारक हुआ । पश्चिमी विद्वानों के विचारों के विरुद्ध संघर्ष के सिलसिले में तथ्यों को तोड़ना–मरोड़ना एक बात है मगर अपने ही देशवासियों के विरुद्ध इतिहास के सत्यों को नकारना ठीक नहीं था । पहले अर्थ में तो इसका कुछ नैतिक आधार भी था कि पश्चिम ने कीचड़ उछालने का काम शुरू कर दिया था कि उसने भारत पर आधिपत्य स्थापित किया था और आर्थिक शोषण को इस सीमा तक पहुँचा दिया था कि जनता बिल्कुल निर्धन और तबाह हो गयी थी । इसीलिए विदेशियों के विरुद्ध इतिहास के साथ छेड़खानी भी क्षम्य हो सकती थी । लेकिन अपने इन देशवासियों के साथ जो इन्हीं के समान पीड़ित थे और शायद कुछ क्षेत्र में हिन्दुओं से अधिक पीड़ित थे इतिहासकारों को अधिक वस्तुनिष्ठ और सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए था । मगर ऐसा हुआ नहीं टॉड के "एनालस एण्ड एन्टीक्यूटिस ऑफ राजस्थान" को प्रधान स्रोत बनाकर इतिहासकारों ने राजपूतों और मुसलमानों के बीच दीर्घकालीन संघर्षों का अति रंजित विवरण दिया । जिसमें प्राय: सदा राजपूतों को विजयी बताया गया हर राजपूत योद्धा को शूरवीर के रूप में और उसके विरोधी को शैतान के रूप में दिखलाया गया । उसी तरह से मराठों के अभियानों को भी दिखलाया गया जिससे हिन्दुओं को बड़ी प्रसन्नता होती थी और मुसलमानों को बड़ा सदमा । ये इतिहासकार मराठों के काले कारनामों को मल गये । इसी तरह से सिक्का इतिहास की एक ऐसी रूप–रेखा तैयार की गयी, जिसमें राजपूतों, मराठों और सिक्खों को राष्ट्रीय उत्थान का चमकता सितारा दिखाया गया और इन्हीं विचारों को नाटककार, उपन्यासकार और कवियों ने चुन लिया और अपनी कल्पना का रग चढा कर उस स्थिति को पैदा किया जिसमें भाई–भाई एक दूसरे की गरदन काटने लगे । कहा जा सकता है कि भारत विभाजन के लिए केवल जिन्ना ही उत्तरदायी नहीं थे, बल्कि वे इतिहासकार भी जो इन साम्प्रदायिक भावनाओं के जनक थे, कहा जा सकता है इन्होंने बीज बोया अंग्रेजों ने पौधों को सींचा और जिन्ना ने फसल काटी ।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मुसलमान दोषी नहीं थे । हिन्दु और मुसलमान दोनों ही दोषी थे । मुसलमान इतिहासकार भी बदला लेने के लोभ का संवरण नहीं कर सके और हिन्दुओं से कम विचारशील होने के कारण वे अपने आक्रमण में अधिक उग्र थे । इतिहास अब बौद्धिक विकास के बदले युद्धक्षेत्र हो गया । जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दूसरे पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए गुत्थमगुत्था करने लगे और पारस्परिक समानहित के असीमित क्षेत्र को भूल गये। इतिहास की भी हानि हुई और वह अपना उद्देश्य भूल कर सतह पर ही कुछ

ऐसे सत्यों को पाने की कोशिश करने लगा जिससे हिन्दु और मुसलमान इतिहासकार एक दूसरे पर चोट कर सके और इसका दुखद फल हुआ।

यह कहा जा चुका है कि सर सैयन ने मुसलमानों का ध्यान इस्लामी और धार्मिक इतिहास की ओर आकृष्ट किया था। अब मौलाना अबुलकलाम आजान उनका ध्यान राजनीतिक इतिहास की ओर खींचा। आजाद इतिहासकार नहीं थे। किन्तु उन्होंने अपने पत्र अल–हिलाल के द्वारा मुसलमानों में राजनैतिक चेतना जगायी और इस कौम के बुद्धिजीवियों के बीच सनसनी पैदा कर दी। इन्होंने उनकी राष्ट्रवादी इतिहासकारों की प्रमुख धारा में मिलने के लिए कहा जिससे उनको राष्ट्र की सेवा कर सके और हिन्दु मुसलमान साथ–साथ होकर संयुक्त मोर्चा कायम करें, और अंग्रेजों के इस अभियोग को गलत सिद्ध करें कि भारतीय अभी भी राजनीतिक दृष्टि से अपने राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ हो। अगर इतिहासकार एक दूसरे पर कीचड़ उछालने के लोभ का संवरण कर पाते तो वे अंग्रेजों की इस चाल को नाकाम कर सकते थे। खिलाफत आंदोलन के समय राष्ट्रीय चेतना अपनी चरमबिंदु पर थी।

मगर इसके बाद मुसलमान इतिहासकारों में एक नया झुकाव परिलक्षित होता है और उनको दोहरे आक्रमण का सामना करना पड़ा। एक तो एलफिस्टन इलियट, डार्सन, लेनपूल, इरविन, विवीरेज, हेग्रविन्सेंट, स्मिथ और मूरलैंड जैसे अंग्रेज इतिहासकारों ने पहले ही उन लोगों के मन में विष पैदा कर दिया था जो अभी भी विश्वास कर सकते थे कि मध्यकालीन भारत के मुस्लिम शासन में कुछ अच्छाइयां हो सकती थी। दूसरी और हिन्दू इतिहासकार थे जिन्होंने हिन्दु संस्कृति की श्रेष्ठता की वकालत की थी, जिसके निहितार्थ यह था कि इस्लामी संस्कृति आत्मिक शक्ति से अधिक पाशविक बल पर आधारित थी। इन रुझानों का बहुत ही अनिष्टकारी प्रभाव हुआ।

19.5 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन

साम्प्रदायिक इतिहास लेखन के विपरीत राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों का एक ऐसा भी समूह था जो राष्ट्रीय एकता के तत्वों पर अधिक जोर देता था। भंडारकर और राय चौधरी जैसे संतुलित इतिहासकार भी थे। जिन्होंने मध्ययुग पर कुछ लिखा ही नहीं और जिन लोगों ने इस पर कुछ लिखा जैसे यदुनाथ सरकार, ईश्वरी प्रसाद और सी. वैद्य वे अधिक संतुलित थे। इसलिए मुस्लिम प्रथकतावादियों को अधिक प्रिय नहीं थे। खिलाफत के बाद इतिहास लेखन में इसलिए तीन धारायें स्पष्ट परीक्षित होती है पहली धारा तो उन इतिहासकारों की थी जो राष्ट्रवादिता इतिहास की थी और जिसमें बात पर जोर दिया कि जो मुसलमान और हिन्दु दोनों ही के बीच एकता की चीजें थी वे अधिक महत्वपूर्ण थी। बनिस्पत उन चीजों के जिसमें दोनों का साथ नहीं था। दूसरी धारा उन लोगों की थी जो हिन्दु और मुसलमानों को अलग–अलग देखते थे और जिन्होंने यह दिखलाने की प्रयत्न किया कि मुसलमानों की अपनी अलग पहचान थी और इसलिए जो उनका मेल नहीं खाता था। वह अधिक महत्वपूर्ण था। तीसरी धारा ऐसे लोगों की थी जो किसी पूर्वाग्रह से पीड़ित नहीं थे। अधिक वस्तुनिष्ठ थे। मुसलमान इतिहासकारों की विशेष देन मध्य भारत के इतिहास लेखन में है और इसमें सबसे प्रमुख नाम मोठ हवीव का एवं मोहम्मद नजीम, वही हुसैन, जहीरूद्यीन फारूकी के० एम० अशरफ, एस० एम० जफर, इब्नहसन, आगा, महदीहुसैन इश्त्याक, हुसैन कुरैशी, हारू खां शेरवानी, ए० बी० एम० हबीबुल्ला, अजीज अहमद,

शेख अब्दुल रसीद, मोहम्मद अकबर, सलीक निजामी मुरूल हसन इरफान हबीब इत्यादि का है । इसमें अधिक इतिहासकार राष्ट्रवादी इतिहासकार है ।

मोहम्मद हबीब प्रथम मुस्लिम इतिहासकार है जिन्होंने घोषणा कि की महमूद गजनवी सच्चा मुसलमान नहीं था क्योंकि उसने घोर इस्लाम विरोधी काम किये थे तथा यह जनश्रुति दी वह इस्लाम के लिए लड़ रहा था । काल्पनिक फितूर है । हबीब का कहना था कि इस्लाम उन नैतिक, धार्मिक मूल्यों पर आधारित था जिन पर लालच, आक्रमण अभिलाषा, तोड़–फोड़ और मोह से कोई संबंध नहीं हैं । उनका कहना था कि ग्यारहवीं शताब्दी होते–होते कोई संबंध नहीं है । उनका कहना था कि ग्यारहवीं शताब्दी होते पैगम्बर की धार्मिक अर्न्तदृष्टि समाप्त हो गयी थी और उसका स्थान निहित स्वार्थ, निरंकुश राजतंत्र और राजनीतिक तंत्र में आक्रामक झुकाव ने ले लिया था । हबीब ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों को यह चेतावनी दी थी कि वे महमूद को सूरमा नहीं समझे, यह नहीं समझे कि मुसलमानों के इतिहास में उसका कोई स्थान था और यह भी न समझे कि वह सच्चा मुसलमान था । उन्होंने मुसलमानों को चेतावनी दी कि इस्लाम के असली दुश्मन सदा से ही इसके अपने ही कट्टर अनुगामी रहे हैं ।

ऐसे राष्ट्रवादी इतिहासकार भी थे जिन्होंने राष्ट्रीय धारा से मुसलमानों के उदासीन हो जाने के अनिष्टकारी प्रभाव का अनुभव किया, और राष्ट्र के हित में हिन्दु मुस्लिम एकता को स्थापित करने के लिए उनके बीच के मतभेदों को कम करके दिखाने का और उनके बीच की सहमति को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर दिखाने का प्रयास किया । इन लोगों ने फूट के बीज बोने वाले शैतान के रूप में अंग्रेजों को ही चित्रित किया । यह दिखलाने की कोशिश की गई कि भारत में मुस्लिम शासन को सम्पूर्ण इतिहास ऐसे युग का इतिहास है जिस समय कोई हिन्दू मुस्लिम समस्या नहीं थी । बल्कि यह समस्या अंग्रेजों के आने के बाद उठी । अंग्रेजों का यह उद्देश्य था कि वे दो भाइयों के बीच फूट डालों और शासन करो का ऐसा खेल खेले कि वे दोनों एक–दूसरे के दुश्मन हो जाये । यह दिखलाया गया कि हिंदु लोग मुसलमानी शासक में प्रजा नहीं समझे जाते थे । शासक के परिवर्तन के साथ केन्द्र के सतह: पर ही व्यक्ति का परिवर्तन हुआ था दूसरी सारी चीजे वैसी ही थी । जैसी सदियों से चली आ रही थी । डॉ० ताराचन्द की पुस्तक "इंफ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर" इसी दिशा में एक प्रयास था । इलाहाबाद में डॉ० ईश्वरी प्रसाद और अनेक ऐसे थे जिन्होंने इस कार्य को आगे बढ़ाया । मगर उनके लेखनों से उन अधिक अनुदारवादी लेखकों का असर खत्म नहीं हुआ जो इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी जहर फैला चुके थे।

19.6 मार्क्सवादी इतिहास लेखन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय इतिहास लेखन अधिक स्वस्थ संतुलित और आलोचनात्मक हो गया । हम पहले देख चुके हैं कि राष्ट्रीय जागरण के साथ ही पूर्वाग्रह ग्रस्त यूरोपीय विद्वानों द्वारा भारतीय इतिहास लेखन के विरूद्ध इस देश के विद्वानों में स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई, और इतिहास लेखन में यहां राष्ट्रीय उन्माद भी परिलक्षित हुआ और इस असंतुलित तत्व के कारण भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवाद के चित्र भी परिलक्षित हुए जो परिस्थितिवश पीछे कल्चर भारत विभाजन के लिए उत्तरदायी थे । स्वतंत्रता प्राप्ति और भारत विभाजन के पश्चात भारतीय इतिहास लेखन में दो परस्पर विरोधी तत्व बहुत प्रमुख हो गये एक तो साम्प्रदायिक इतिहास लेखन, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं, और अधिक स्पष्ट और उग्र हो

गया, और दूसरा मार्क्सवादी इतिहास लेखन भी अब बहुत मुखर हो गया । प्रारम्भ से ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तरह–तरह के समानता मूलक तत्वों का आभास हमें मिलता है और जैसे जैसे अर्न्तराष्ट्रीय क्षितिज पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण अधिक उभरने लगा भारतीय जीवन पर भी मार्क्सवादी प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होने लगा । यह कोई संयोग की बात नहीं है कि 1920 के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के तीनों चरण (असहयोग और खिलाफत 1920–22) नमक सत्याग्रह (1930–34) और भारत छोडों आन्दोलन (1942) के समय मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ने लगा । स्वभावत: हमारे भारतीय इतिहास लेखन पर भी मार्क्सवादी प्रभाव उभरने लगा । किन्तु यह लेखन प्रारम्भ में राजनीति में सक्रिय रहने वाले लोगों तक ही सीमित रहा । लेनिन ने कहा था – " कम्यूनिस्ट इंटरनेशनल को बुर्जुआ लोकतांत्रिक आंदोलनों का औपनिवेशिक और पिछड़े हुए देशों में समर्थन करना चाहिए, बशर्ते कि इनमें भविष्य में सर्वहारा दलों को उदय के बीज हो । किन्तु एम० एन० राय का दृष्टिकोण स्वतंत्रता आन्दोलनों के प्रति नकारात्मक था और यह झुकाव बना रहा । असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद एम० एन० राय ने गांधी के नेतृत्व के वर्ग चरित्र की आलोचना की और कहा कि इन्होंने आन्दोलन को दो शक्तियों (जमींदारों और औद्योगिक वर्ग) के सामने बलिदान कर दिया । जुलाई 1924 में इन्होंने लिखा कि गांधीवाद की पराजय अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंच गयी है । साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन के नेता के रूप में अब गांधी का अंत है । पीछे चलकर ए. आर. देसाई ने अपनी पुस्तक भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि में लिखा है कि गांधीवाद ने राष्ट्रीय बुजुआ के आवश्यकताओं की हो पूर्ति की क्योंकि इन्होंने जनसंघर्ष द्वारा– साम्राज्यवाद पर दवाब डाला और दूसरी चीज यह हुई कि इन्होंने संघर्ष को सीमित कर दिया और दूसरी दिशाओं में मोड़ दिया जिससे यह भारतीय संपत्तिशाली वर्गों के विचार के लिए निरापद हो । ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद के विचार इससे मिलते–जुलते है । आर० पी० दत्त ने अपनी पुस्तक आज का भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन में गांधी की भूमिका का वर्णन करते हुए विश्लेषणात्मक शैली अपनाने के स्थान पर गाली गलौज का प्रयोग किया है । और कहा है कि अनगिनत पराजयों का यह नायक, बुर्जुआ वर्ग का सौ भाग्य क्रांति की दुर्जेय लहर में जन– आन्दोलन को नेतृत्व अपने हाथ में लेने की तरकीब सोच रहा था । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मार्क्सवादी इतिहास लेखन में इस तरह के असंतुलित विवेचन बहुत कम होने लगी।

कहना नहीं होगा कि भारतीय इतिहास लेखन में मार्क्सवादी धारा को पांडित्यपूर्ण और संतुलित दिशा देने वाले डी० डी० कौशाम्बी थे । वे अदभुतमंदा के धनी थे और अनेक विषयों के अध्ययन के पश्चात उन्होंने इतिहास लेखन पर अपना ध्यान दिया था। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय इतिहास ले खन में मार्क्सवादी विद्वानों ने अहम भूमिका अदा की है । इन लोगों ने बड़ी निष्ठा और कठोर परिश्रम के आधार पर वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन की चेष्टा की है । नुरूल हसन, आर एस. शर्मा, इरफान हबीब, सतीशचन्द्र और दूसरे कई चोटी के इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास लेखन को समृद्ध, संतुलित, आलोचनात्मक और वैज्ञानिक बनाया है । यहां यह बता देना समीचीन होगा कि इन लोगों ने मार्क्सवादी विचारों का अंधानुकरण नहीं किया है, और भारतीय परिवेश में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से यहां की ऐतिहासिक समस्याओं को समझने की चेष्टा की है । उदाहरण के लिए जैसे मार्क्स ने जिस काल और परिस्थिति में एशियाई उत्पादन की विधि की चर्चा की थी, उसका इन लोगों ने पुनरीक्षण किया और आज के समय और विकास के परिवेश में उसको समझने की चेष्टा की । उसी तरह से भारतीय

मार्क्सवादियों ने भारत के संदर्भ में सामंतवाद का विश्लेषण किया । सभी साम्यवादियों में भी सामंतवाद पर मतैक्य नहीं है और वे बड़ी निर्भीकता से अपने दृष्टिकोण का निरूपण करते है । कहना नहीं हो गा कि भारतीय मार्क्स वादी इतिहास ले खन अब अपनी किशोरावस्था को पार कर चुका है और पूर्णरूपेण व्यस्क है ।

19.7 सारांश

इस इकाई में हम लोगों ने भारतीय इतिहास लेखन की हाल की प्रवृत्तियों पर विचार किया है । इन प्रवृत्तियों में परम्परावादी, राष्ट्रवादी सम्प्रदायवादी और मार्क्सवादी इतिहास लेखन की प्रणालियां प्रधान है । जैसे–जैसे भारतीय इतिहास लेखन अधिक आश्वस्त, स्मृद्ध और गवेषणापूर्ण होता गया वैसे–वैसे प्रारम्भिक दिनों की भ्रांतियां दूर होती गयी । परम्परावादी इतिहास लेखक भी आज अधिक पूर्ण इतिवृत्तात्मक इतिहास लिखते हैं और आज की पाठ्य–पुस्तकें जो अधिकांशत: परम्परावादी शैली पर आधारित हैं, अधिकांशत: अधिक संतुलित वस्तुनिष्ठ और उचित स्रोतों पर आधारित है । राष्ट्रवादी इतिहास लेखन भी पहले के यूरोपीय इतिहास लेखन की प्रतिक्रिया में रक्षात्मक नहीं है और अपने राष्ट्र की उपलब्धियों को अतिरंजित करके नहीं दिखाते हैं बल्कि तथ्यों पर आधारित रखते है और उनमें आत्मालोचन की झलक भी मिलती है । अब इनकी भावनाएँ कुंठित नहीं है, और दूसरे राष्ट्र के इतिहासकारों से वे बराबरी की सतह पर आंख मिलाकर देख सकते हैं । दु:ख की बात यह है कि ज्यों–ज्यों भारत स्वतंत्रता की दहलीज पर पहुंचने लगा, साम्प्रदायिक तनाव अधिक उभरने लगे और इनका परिणाम राष्ट्र का बंटवारा हुआ । विभाजन के सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन हाल के वर्षों में बहुत अधिक आक्रामक हो गया हाल के वर्षों में विकास हुआ है, और इससे समाज के प्रबुद्ध वर्ग तथा जन–साधारण दोनों ही अधिक तथ्यपूर्ण वैज्ञानिक और तार्किक इतिहास लेखन की उपयोगिता को लोग समझने लगे है ।

19.8 बोध प्रश्न

परम्परावादी इतिहास लेखन का क्या तात्पर्य है?

स्वातंत्रयोत्तर भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में क्या परिवर्तन हुआ?

सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन के स्रोतों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।

मार्क्सवादी इतिहास लेखकों का भारतीय इतिहास लेखन में क्या योगदान है? इस पर तीन सौ शब्दों में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

भारत के विभाजन में इतिहास लेखन का क्या हाथ रहा है? इसका विवेचन संक्षेप में कीजिए ।

इकाई 20

भारतीय लोक साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 लोक साहित्य की परिभाषा और उसकी विधाएँ
20.3 लोक साहित्य और समाज का सांस्कृतिक प्रारूप
20.4 लोक साहित्य में वर्णित आदिम विचार
20.5 लोक साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन
20.6 सारांश
20.7 बोध–प्रश्न
20.8 संदर्भ ग्रंथ

20.0 उद्देश्य

- लोक साहित्य लोक की वस्तु है, यह मौखिक परम्परा से निरन्तरता में अनेक युगों से चला आ रहा है ।
- सामान्य जन का विकास, उसके मनोभाव तथा उसकी आस्था का अध्ययन करने के लोक साहित्य का विशेष महत्व है ।
- मानव समाज राजनीति से इतर भी बहुत कुछ है तथा मानव की विकास यात्रा में अनेकों महत्वपूर्ण प्रसंगों का अध्ययन करने के लिए लोक साहित्य ही एक ऐसा स्त्रोत है जो सामाजिक इतिहास लेखन में महती भूमिका का निर्वाह कर सकता है ।
- इस इकाई में लोक साहित्य की परिभाषा, उसकी विभिन्न विधाओं तथा लोक साहित्य का सामाजिक इतिहास लेखन में महत्व आदि बिन्दुओं का अध्ययन किया जाएगा ।

20.1 प्रस्तावना:

लोक साहित्य मानव की आंतरिक संवेदनाओं का प्रतिबिम्ब होता है । इसका निर्माण केवल लौकिकता की पृष्ठभूमि में ही होता है । जैसा कि सर्वविदित है कि संस्कृति की अनेक धाराओं में एक धारा ऐसी भी होती है जो अवयवी रूप से मानव प्रकृति से जुड़ी रहती है । संस्कृति के इस स्वरूप के चारों ओर एक आर्थिक आवास और एक विशेष प्रकार की सामूहिकता गुंफित रहती है । इस विशेष धारा का अध्ययन लोक साहित्य के अनुशीलन से ही किया जाना संभव हो सकता है । इस इकाई में लोक साहित्य के इसी ऐतिहासिक सांस्कृतिक पक्ष का विवेचन किया गया है ।

20.2 लोक साहित्य की परिभाषा और उसकी विधाएँ:

लोक साहित्य – लोक और साहित्य दो शब्दों से निर्मित हुआ है । सामान्यता लोक साहित्य का तात्पर्य उस साहित्य से लिया जाता है जो साम्यता की सीमाओं से बाहर है । लोक

साहित्य को और व्यापक अर्थों में लिया जाए तो इसको अधोलिखित बिन्दुओं द्वारा परिभाषित किया जा सकता है –

1 लोक साहित्य ग्रामीण साहित्य है ।

2 लोक साहित्य वह युग–युगीन साहित्य है जो मौखिक परम्परा से प्राप्त होता है, जिसके रचयिता का पता नहीं है तथा जिसे समस्त लोक अपनी कृति मानता है ।

3 लोक साहित्य वह साहित्य है जो लोक मनोरंजन के लिए लिखा गया है ।

वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर जिसे आज सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी साधना समाहित रहती है जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है । लोक साहित्य को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न क्रम में विभाजित किया जा सकता है ।

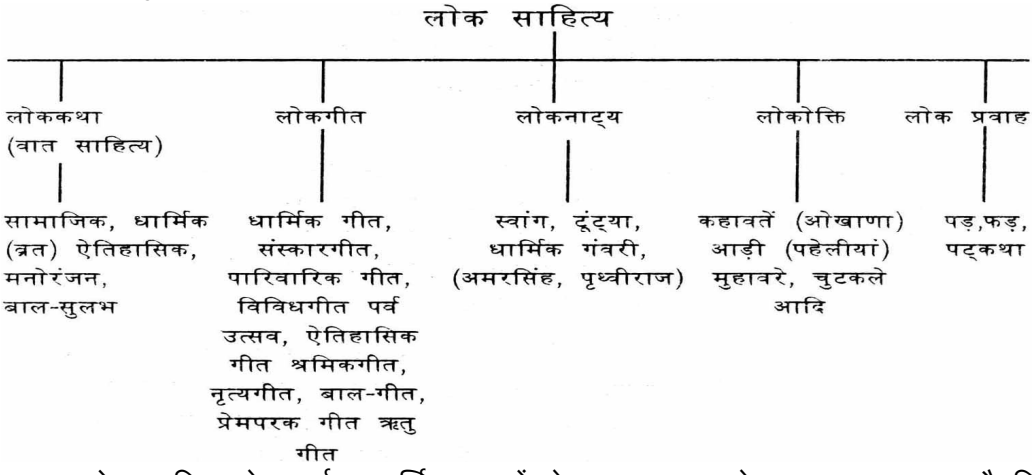

लोक साहित्य के उपर्युक्त वर्णित प्रकारों से यह सुगमता से समझा जा सकता है कि लोक साहित्य मानव समुदाय के सभी पक्षों को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है जिससे संस्कृति के विकास क्रम को विश्लेषित किया जा सकता है ।

रामचन्द्र बोड़ा ने अपनी पुस्तक " लोक साहित्य " में, लोक साहित्य रूढ़ मान्यताओं को खण्डित करते हुए लिखा है कि " यदि लोक साहित्य के समूचे रूपों लोक –गीत, लोक –वार्ता, लोक –परम्पराएं, लोक –तरीकों का निरूपण करें तो पता चलेगा कि मानव समाज में एक ऐसा साहित्य भी सृजित होता रहा है और होता रहता है जो हमेशा अपने को कुछ सांस्कृतिक संरचनाओं, सांस्कृतिक प्रसंगों व सांस्कृतिक उपकरणों के माध्यम से जीवित रखता है । "

"अत: केवल इस प्रकार के साहित्य को, जो सौ सांस्कृतिक ढांचों, सामाजिक प्रसंगों व सामाजिक उपकरणों के माध्यम से जीवित रहता है या रहता रहा है, वहीं लोक साहित्य कहा जा सकता है । इस तरह लोक साहित्य आदिम व प्राचीन समाज मैं भी था तो आधुनिक समाज में भी है और आगे भी रहेगा । "

लोक साहित्य के अध्येयताओं का मानना है कि लोक साहित्य का नृशास्त्र, समाज शाल, भाषा शास्त्र, भौगोलिक ज्ञान, ऐतिहासिक खोज और सांस्कृतिक अध्ययन सभी दृष्टियों से परम महत्व है। यदि इतिहासकार को सामान्य जन की विकास यात्रा को जानना है तो उसको सही मूल्यांकन लोक साहित्य द्वारा ही किया जा सकता है क्योंकि सामान्य जन की समस्याएं

सामाजिक निर्माण से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है और इनका वास्तविक प्रतिबिम्बित लोक साहित्य द्वारा ही परिलक्षित हो सकता हैं ।

लोक साहित्य के अन्तर्गत प्रमुख रूप से लोक कथाओं, लोक गीतों, लोक नाट्य तथा लोकोक्ति साहित्य को समाहित किया जा सकता है ।

यह लोक कथाएं मनोरंजन का स्त्रोत होने के अतिरिक्त जहां एक और अनेक कल्याणकारी निर्देश प्रदान करती हैं तो वहीं दूसरी ओर समाज में रूढ़ हो गए पर्वों त्यौहारों और व्रतों का भी उल्लेख करती है ।

इसी प्रकार लोक गीत जहां एक और जनमानस की भाव लहरियों को प्रतिबिम्बित करते है तो वहीं इनसे सामान्य जन की विकास यात्रा के इतिहास का भी ज्ञान होता है । इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका में, " लोक गीतों को मनुष्य की उत्पत्ति, विकास और रीति–रिवाजों की विद्या " की तरह परिभाषित किया गया है ।

लोक कथा तथा लोक गीतों के समान ही लोक नाटक लोकधर्म के प्रभाव और उसकी व्यापकता को प्रमाणित करने तथा जानने का एक सशक्त माध्यम है तो लोकोक्ति साहित्य जन संस्कृति तथा जनमानस को समझने में एक प्रमुख उपकरण की तरह सहायक होता है । अत: यह कहा जा सकता है कि लोक साहित्य की सभी विधाएँ आम जन की स्वत: छर्त वाणी है तथा इनका जन मानस की सांस्कृतिक विकास यात्रा के इतिहास को जानने समझने में विशेष महत्व है।

20.3 लोक साहित्य और समाज का सांस्कृतिक प्रारूप:

मानव सामान्यत: दो प्रकार से व्यवहार करता है । मानव का पहिले प्रकार का व्यवहार वह होता है जब उसके व्यवहार में किसी भी सामाजिक उपकरण का योगदान नहीं होता है । मानव के इस व्यवहार को साधारण व्यवहार या "व्यष्टि व्यवहार" कहा जा सकता है, इसके विपरीत जब मनुष्य के कार्य अथवा व्यवहार किन्हीं सामाजिक उपकरणों के माध्यम से संपन्न होते हैं तो उसका वह व्यवहार अथवा कार्य समष्टि का अंग हो जाता है । मानव का यही व्यवहार, जो सामाजिक उपकरणों के माध्यम से संपन्न होता है, मानव संस्कृति का संवाहक होता है और इसी से समाज की सांस्कृतिक संरचना निर्मित होती है । इस सांस्कृतिक संरचना के प्रभाव क्षेत्र में आने वाला साहित्य लोक साहित्य के नाम से बोधित किया जाता है तथा इस साहित्य से मानव समाज की सांस्कृतिक विधियों को जाना व समझा जा सकता है । लोक सार की गत्यात्मकता लोक साहित्य का एक प्रमुख तत्व है यह गत्यात्मकता सामाजिक उपकरणों से गूंथी रहती है ।

लोक साहित्य के सांस्कृतिक निरूपण से लोक सार का अर्थ जानना व समझना नितान्त महत्वपूर्ण है क्योंकि लोक सार वह उर्वरा भूमि है जो लोक साहित्य को सिंचित करती है । लोक सार को दूसरे शब्दों में मानव प्रकृति के नाम से जाना जा सकता है । लोक सार अथवा मानव प्रकृति एक अविच्छिन प्रवाह है तथा यह मानव जाति के समूचे विकास प्रवाह में बढ़ता रहता है । इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि मानव प्रकृति अथवा लोक सार एक ऐसी योग्यता है जो मनुष्य के अपने अस्तित्व के संदर्भ को सामूहिक रूप से चलाने में योगदान देती है ।

जैसा कि पूर्व में भी लिखा जा चुका है कि मानव का स्वभाव व्यक्तिगत एवं समष्टिगत दो प्रकार का होता है । मानव के ऐसे कार्य, जिन्हें वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ

मिलकर करता है, सांस्कृतिक प्रारूप का निर्माण करते हैं । समाजशास्त्रीय नियमों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक प्रारूपों का स्वरूप दिक्कालात्मक होता है और इस दिक्कालात्मक स्वरूप से तत्कालीन मानव के जगत दृष्टिकोण को निर्धारित किया जा सकता है । इन सांस्कृतिक प्रारूपों से व्युत्पन्न समारोह आदि उस समय तक जीवित रहते है जब तक उनमें सहज मानव प्रकृति का अंश निहित रहता है । सहज मानव प्रकृति के अंश की मात्रा घटने पर वह सांस्कृतिक प्रारूप ही समाप्त होने लगता है ।

इन्हीं संदर्भों में लोक साहित्य को नृविज्ञान के द्वारा जानना व समझना आवश्यक हो जाता है । नृविज्ञान मानव का शारीरिक व सांस्कृतिक दो पक्षों में अध्ययन करता है । सांस्कृतिक नृविज्ञान का क्षेत्र प्रारम्भिक मानव की जीवन शैली, धार्मिक परम्परा आदि का अध्ययन करना होता है । यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि जिस प्रकार से नृविज्ञानी पुरा मानव के साध ही मानव समाज के विविध स्वरों का अध्ययन करता है उसी प्रकार लोक साहित्य का अध्येयता भी लोक साहित्य में सन्निहित समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों का प्रत्यक्ष या परोक्ष अध्ययन करता है ।

अंततः यह कहा जा सकता है कि लोक साहित्य के विभिन्न स्वरूप लोकगीत लोक कथा, लोक वार्ता, लोक विश्वास तथा लोक परम्पराएं मानव समाज के अनेक सांस्कृतिक प्रारूपों से जुड़े रहते है लेकिन लोक साहित्य का स्वरूप सांस्कृतिक प्रारूपों की तुलना में कम स्थायी होता है । प्राय: यह देखा जाता है कि सांस्कृतिक प्रारूप, जिनमें लोकसार की गहनता होती है, स्वयं को नई संस्कृति के अनुरूप निर्मित करने का प्रयास करते रहते हैं । इसी प्रकार अनेकों बार लोक साहित्य सांस्कृतिक संश्लेषण की प्रक्रिया के भी उदाहरण प्रस्तुत करता है । इस हेतु राजस्थान के एक गीत का उदाहरण दिया जा सकता है जो विभिन्न सांस्कृतिक प्रारूपों की ओर इंगित करता है ।

"तालियाँ जलेबियां सलीमशाही होय बे
थारी.....धीयडली हरामजादी होय बे"

इस गीत में दुल्हन को विवाह के शुभ अवसर पर "हरामजादी" कहना मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव का द्योतक है ।

अत: लोक साहित्य मानव प्रकृति में होने वाले विकास, बदलाव तथा सांस्कृतिक अंतरावलम्बन की प्रकृति को एवं सांस्कृतिक प्रारूपों को समझने का एक प्रमुख ऐतिहासिक उपकरण है । इस प्रकार लोक साहित्य मानव प्रकृति के विभिन्न पक्षों को जानने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है । जहाँ लोक गीत पारिवारिक संबंधों की मधुरता को ससुराजी म्हारा घर रा राजा सासू जी ठकुराणी ओ" कहकर इंगित करते है तो वहीं दूसरी और पुत्रवधु का "..... मैं चूल्हा अगा करने वाली हूं अब तुम्हारा बेटा मेरा है " कहना पारिवारिक सच्चाई को भी इंगित करता है । इसी प्रकार लोक गीत आम जीवन में प्रयुक्त जीविकोपार्जन के तरीकों पर भी प्रकाश डालते हैं । जीविकोपार्जन से संबंधित लोक गीतों से यह ज्ञान प्राप्त होता है कि राजसतन में अनेक ऐसी जातियाँ थी जो गीत, नृत्य और नाटक द्वारा अपना जीवकोपार्जन करते थे ।

जीवकोपार्जन के अतिरिक्त अनेक ऐसे लोक गीत गायन की भी राजस्थान में परम्परा थी जिससे राजस्थानी जनमानस में व्याप्त दैवीय आस्था तथा प्रतिष्ठित लोक देवताओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है । ऐसे लोक गीतों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि

राजस्थानी लोक जीवन में पौराणिक देवी देवताओं के अतिरिक्त अन्य लोक देवता जैसे रामदेवजी, भैरो जी, पाबू राठौड़, गोगा जी चौहान तेजा जी जाट, जांभो जी, केसरिया कवर, भभूता सिंह, भोभिया, पीर और पंच पीर, जीण माता, सकराय माता, शीतला माता और करणी माता राजे जाते थे । इसके अतिरिक्त सतीत्व रक्षा तथा पतिव्रत धर्म पालन हेतु बलिदान होने वाली सतियाँ, अविवाहित कन्याएँ थी इनके साथ–साथ पितर लोकदेविया तथा भोमिए भी दैवी देवताओं के समान पूजे जाते थे।

उपर्युक्त वर्णित विभिन्न देवी–देवताओं तथा असाधारण कार्य कर समाज में प्रतिष्ठित व्यक्तियों की पूजा करने की परम्परा के आधार पर यह निर्णय लिया जा सकता है कि राजस्थानी लोक संस्कृति धार्मिक आस्था और विश्वासों से ओतप्रोत थी । मानव जीवन के सभी पक्ष धन, संतान तथा अन्य सभी लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए इन शक्तियों की शरण में जाना आम मानस की प्रवृति सी बन गयी थी ।

राजस्थानी लोग गीतों के अध्ययन से यह भी ज्ञान होता है कि आम जनजीवन शास्त्रीय रूप से निर्धारित षोड्स संस्कारों से प्रभावित था । इन गीतों के अध्ययन से य ह पता चलता है कि तत्कालीन समाज में सीमन्तोन्नयन अर्थात् बालक के जन्म से भी पूर्व गर्भ के सप्तम अथवा अष्टम मास में शास्त्र विधि अनुसार इन्द्र विद्युत को शान्त करने हेतु मनाए जाने वाला संस्कार, जातकर्म, चूड़ाकरण, कर्णबधन, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार गहरे रूप में प्रतिष्ठित थे। मृत शरीर की अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करने और वहां से लौटने तक के गीत भी महत्वपूर्ण रहे हैं ।

लोक गीतों की श्रेणी में ऐतिहासिक दृष्टि से वीर गीतों का एक विशेष महत्व है । इस सन्दर्भ में बारहवीं शताब्दी में रचित वीरगाथा 'आल्हा' का विवरण अत्यन्त महत्व का है । इस वीरगाथा की रचना मूलत: बुंदेलखंडी में हुई थी । बनाफर शाखा के क्षत्रिय आल्हा और उदल महोबा के परमार्दिदेव (परमाल) की सेना के प्रमुख वीर थे । परमाल की स्त्री, रानी मल्हना अत्यंत तेजस्वी और सुन्दर थी । उसी की आज्ञा से आल्हा – उदल ने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी और दिल्ली शासक पृथ्वीराज चौहान से युद्ध किया । वर्तमान में इस रचना का "बुंदेलखंडी स्वरूप तो कहीं प्राप्त नहीं होता है लेकिन इसके भोजपूरी, कन्नोजी और छत्तीसगढ़ी स्वरूप सहज में मिल जाते हैं । "

इसी तरह पंजाब' में "कर" के नाम से वीरगीत प्रचलित है । पंजाब में सबसे पुरानी वार अमीर खुसरों रचित "तुगलक शाह खुसरोखान दी लड़ाई" है । इसके अतिरिक्त गुरु गोविन्द सिंह की "चंडी दी वार" दूसरी प्रमुख रचना है । इसी प्रकार से गढ़वाल के "पंवाड़े", जिनमें हमें गढ़वाली राजा अजयपाल द्वारा गढ़वाल को एक सूत्र में एकीकृत करने की घटना का ज्ञान प्राप्त होता है, महत्वपूर्ण वीर गीत है तो दूसरी और कुमाऊं के "भेड़ों" से हम चंद राजाओं के बहादुर कार्यों का पता चलता है ।

महाराष्ट्र में भी " पोवाड़ा " गाए जाने की परम्परा थी, इन पोवाड़ो का प्रारम्भिक स्वरूप जो आज उपलब्ध है, शिवाजी के समय का है, लेकिन इन सब में गुर्जरों की " हीड़ " मध्यवर्ती भारत के कृषक अमीरों के संबंध में विस्तृत सूचनाएं प्रदान करती है । यह हीड़ आज भी दीपावली के दूसरे दिन गाई जाती है, इनसे यह ज्ञात होता है कि गुर्जरों के देवनारायण ने, जो गुर्जरों का देव पुरूष माना जाता है, अपने भाई भूणा के साथ मिलकर युद्ध किया था तथा शत्रु से बदला

लिया था । इस विवरण से स्पष्ट होता है कि वीर गाथाएं इतिहास के उन अज्ञात पहलुओं तथा आदि जन नायकों के विषय जानकारी प्राप्त करने की एक महत्वपूर्ण सामग्री है ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में लोक साहित्य के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक साहित्य हमारे जीवन का एक ऐसा महासमुद्र है कि उसमें हमारा भूत, भविष्य वर्तमान सभी सिंचित रहता है । वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में " लोक (संस्कृति) का कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार है और निर्माण का नवीन रूप है ।"

लोक साहित्य में सर्वाधिक महत्व लोकगीत का है क्योंकि लोकगीत संगीतमय होने के कारण स्वत: स्फूर्त होते है और इनमें मानव मन की गहरी संवेदनाओं और भावनाओं का स्वाभाविक रूप विद्यमान रहता है । इनकी इस विशेषता के कारण लोकगीतों को मानव विकास की अद्योलिखित प्रक्रियाओं को समझने में प्रयुक्त किया जा सकता है –

1. लोकगीतों से मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास का अध्ययन किया जा सकता है ।
2. लोकगीतों से संस्कृति के मौलिक स्वरूप को समझा जा सकता है ।
3. लोकगीतों के माध्यम से मानव जीवन के उल्लास, उमंग, – करूणा, रूदन तथा उसके सुख दुख की कहानी को समझा जा सकता है ।
4. लोकगीतों से संस्कृति की व्यापकता व समग्रता को समझा जा सकता है ।

20.4 लोक साहित्य में वर्णित आदिम विचार

लोक साहित्य मानव के आदिम विचारों को जानने समझने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है । यदि मानव जाति के आदिम काल पर दृष्टि डाली जाए तो यह पता चलता है कि अन्य तथ्यों के अतिरिक्त आदिम विचारों की गत्यात्मकता का नियामक उस समय के व्यक्तियों का संसार के प्रति दृष्टिकोण, उनकी मानसिक योग्यता तथा समाज एवं जीवन के प्रति उनके द्वारा अपनाए गए सिद्धान्तों से निर्धारित होता है । अत: लोक साहित्य भी प्रारम्भ में इन्हीं कार्य–कारणों से निर्धारित प्रकृति की गोद में पनपता हुआ प्रकृति के जिन तत्वों के सम्पर्क में आया वह उन तत्वों का उपभोग करता हुआ, प्रकृति के विभिन्न उपादनों को प्राणवान बना उन्हें नर–नारायण का रूप देकर परिकल्पित करे तो इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए । यही वह मार्ग है जो लोक साहित्य के लिए मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का कार्य करता है । लोक साहित्य पर नृतत्वों का जो प्रभाव होता है वह समयान्तर में सामाजिक विकास के साथ । अपने में नई मानसिक स्थितियों को समाविष्ट कर लेता है इसलिए आधुनिक लोक साहित्य में आदिम भाव के विचारों और विश्वास के साथ अन्य आधुनिक ऐतिहासिक तत्व अनुप्राणित मिलते हैं ।

उदाहरण के लिए राजस्थान की कतिपय लोककथाओं में यह वर्णन आया है कि एक व्यक्ति के पुत्र से उत्पन्न चन्दलाई के खाने से एक कुंवारी राजकुमारी गर्भवती हो जाती है । यह विश्वास केवल राजस्थान में ही अपितु अन्य देशों की लोककथाओं में भी पाया जाता है जिससे यह सिद्ध होता है आदिम मानव के सोचने विचारने में एक सार्वभौमिकता थी । अत: यह कहा जा सकता है कि हर युग और हर काल में लोक साहित्य पर मानवीय सार और सामयिक सामाजिक और प्राकृतिक वातावरणों का निरन्तर प्रभाव रहता है । इसी गत्यात्मकता से लोकसाहित्य में अवयवी भाव बना रहता है तथा इसके माध्यम से अध्येयता संस्कृतियों के अन्तर्व्यापन और अन्तरावलम्बन का अध्ययन कर सकता है ।

20.5 लोक साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन

लोक साहित्य मानव जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हुए हमारे ऐतिहासिक ज्ञान में अभिवृद्धि करते है, इसका मूल्यांकन आगे के पृष्ठों में किया जा रहा है । सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से तो इनका परम महत्व है । मानव के सांस्कृतिक जीवन के उन पक्षों को, जो लिखित परम्परा के अंग नहीं बन सके है लेकिन जिन्होंने हमारे जीवन को सूक्ष्मता से प्रभावित किया है और प्रत्येक और परोक्षतः कर रहे हैं, लोक साहित्य के माध्यम से ही अध्ययन किया जा सकता है । इस लोक साहित्य से अनेकों बार ऐसे विवरण भी प्राप्त होते हैं जो आम जन की सामायिक परिस्थितियों के प्रति समझ को भी प्रकाशित करते हैं ।

राजस्थानी लोक गीतों में अनेक गीत ऐसे प्राप्त होते हैं जिनमें विदेशियों से लोहा लेने के संकल्प का विवरण प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ -

बारली तोपा रा गोला धूडगढ़ में लागे ओ,

मायंली तोपा रा गोला तम्बू ओ – खडे आडेवा

राजाजी रै मैला तो फिरंगी लडियो ओ – काली टोपी रो इसी तरह से प्रकृति को आधार बना डूंग जी ने अंग्रेजों की छावनी लूटने का उद्देश्य स्पष्ट किया है, यथा -

मिनखा निठगी मोठ बाजरी, धोडा निद्रयो घास

कुणहि जाटडो खेत, खडै ला कुणहि भरैला डाण

कु एक बारगी लूटा छाबडी, रहा मादा में नाव

लोक साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से रूपमती और बाजबहादुर की प्रणय कथा भारतीय इतिहास का एक रोचक प्रसंग है । मांडू से सम्बन्धित सामग्री में रूप और बाज की प्रणय गाथा को सभी इतिहासकारों ने अपने विवरण में स्थान दिया है । सभी के मतानुसार रूपमती अनुपम सुन्दरी, स्वर किन्नरी और कवयित्री थी । पश्चिमी जगत के अनेक विद्वानों क्रम्प, विलियम स्टर्लिंग, मेजर बनर्स तथा केप्टन हेरिस ने ऐसी कहानियाँ सुनने का विवरण दिया है ।

इसके अतिरिक्त भर्तृहरि का कथानक थी भारतीय इतिहास का एक ऐसा ही रोचक संस्मरण है । भर्तृहरि का यह कथानक उत्तर भारत, राजपूताना और मध्यप्रदेश के मालवा और छत्तीसगढ़ के भागों में जोगियों, के साहित्य से उपलब्ध होता है । उक्त गीतों की अनुरूपता लिए, भावों की दृष्टि से समान कुछ गीत अन्य जनपदों में भी मिलती है । कुछ ऐसा ही एक गीत का शिमला की पहाडियों और कांगड़ा जिले से देवेन्द्र सत्यार्थी ने उल्लेख किया है । गुजरात में भी इसी प्रकार के गीत प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं ।

इस भर्तृहरि को प्राय: गीतों में उज्जयिनी का शासक बताया गया है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दो भर्तृहरि होने की बात कही है, एक भर्तृहरि को वह शतकों के रचयिता मानते है तो दूसरे को उज्जयिनी का शासक जो गोरख का शिष्य बना था । भर्तृहरि का यह कथानक भोजपुरी, मालवी पंजाबी तथा कांगड़ी में एक समान रूप से मिलता है ।

लोक साहित्य की विद्या " वार्ता " का भी ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व है, अनेक बातों से इतिहास के विभिन्न पक्षों का ज्ञान प्राप्त होता है । वांता से तात्पर्य श्रुति पर आधारित

वार्ता साहित्य से है । इस दृष्टि से राजस्थानी बातों का भारतीय लोक साहित्य में विशेष महत्व है । यहां पर ऐसी कुछ बातों का उल्लेख किया जा रहा है जो इतिहास की दृष्टि से महत्व रखती है।

एक बात " अमीपाल साहरी " है । इस बात के अनुसार दिल्ली शहर में बादशाह अलाउद्दीन राज्य करता था तथा शाह अमीपाल बादशाह का नौकर था तथा उसके पास पाँच सौ सवार थे। अमीपाल की ही तरह मालदेव सोनगरा तथा तटवरत भी बादशाह के नौकर थे । इस बात में तखरत खां और अमीपाल के मध्य युद्ध में दोनों को मृत्यु प्राप्त हुई थी । इसी तरह की एक अन्य कहानी "वातपताई रावल री " है । इस कहानी में यह बताया गया है कि जहां एक ओर राजपूत राजाओं ने बड़ी–बड़ी विशाल वाहिनियों पर विजय पाई थी परन्तु दूसरी ओर वे अपने विश्वासघातियों से स्वयं की रक्षा नहीं कर सके थे । इस कहानी में चापानेर के प्रताप सिंह चौहान, जो इतिहास में पताई रावल के नाम से प्रसिद्ध हुआ था, के शौर्य का विवरण किया गया है ।

" वात राजा मान री " भी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें जयपुर राज्य के मानसिंह का विवरण दिया गया है । इस कहानी में राजा मानसिंह द्वारा काबुल को जीतने का विवरण दिया गया है।

20.6 सारांश

इस प्रकार से लोक साहित्य की अनेकानेक ऐसी विद्याएं है जो विभिन्न रूपों में हमारे ऐतिहासिक ज्ञान को समृद्ध ही करती है । लोक भाषाओं में रचित यह लोक साहित्य इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है, इस लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति से इतिहास के अनेक विलुप्त तन्तुओं को खोजा जा सकता है । जैसा कि पाठकगण जानते है कि भारत एक विविधताओं का देश है, अत: ऐसे विविधतापूर्ण समाज के अध्ययन के लिए आदिम विश्वासों से लेकर अधुनातन वैचारिक और व्यवहारिक आधार पर लोक साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए तथा इस अध्ययन में अन्य विषयों जैसे नृविज्ञान, भाषा विज्ञान तथा समाजशास्त्र के विद्वानों की पूर्ण सहायता लेने. की आवश्यकता है तभी लोक साहित्य का वस्तुपरक अध्ययन हो सकेगा ।

20.7 बोध प्रश्न

1. लोक साहित्य से आप क्या समझते है? लोक साहित्य के ऐतिहासिक योगदान की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?]
2. लोक साहित्य मानव इतिहास की विकास यात्रा का संवाहक है । इस शीर्षक से निबन्ध लिखिए।

20.8 संदर्भ ग्रंथ

(1) पुरुषोत्तम लाल मेनारिया – राजस्थानी साहित्य का इतिहास
रामप्रसाद दाधीच – राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति
स्वर्णलतालोक साहित्य विमर्श
रामचन्द्र बोड़ा लोक साहित्य
श्याम परमार लोक साहित्य विमर्श
जयसिंह नीरज भगवती लाल शर्मा राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा

इकाई 21
इतिहास में तथ्य

इकाई के उद्देश्य

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 इतिहास में तथ्यों का इतिहास
21.3 ऐतिहासिक तथ्य क्या है
21.3.1 सामान्य तथ्य
21.3.2 मूलभूत तथ्य
21.3.3 विशिष्ट तथ्य
21.4 कार्ल बेकर की अवधारणा
21.5 ई. एच. कार. का विवेचन
21.6 तथ्यों का निर्वचन अथवा निर्धारण
21.7 तथ्यों के स्रोत
21.7.1 वैज्ञानिक स्रोत
21.7.2 अवैज्ञानिक स्रोत
21.7.3 साहित्यिक स्रोत
21.8 तथ्यों की व्याख्या
21.9 तथ्य एवं मूल्यांकन
21.10 वस्तुपरकता एवं तथ्य
21.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
21.12 संदर्भ विचार
21.13 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

(i) इतिहास में तथ्यों क महत्व समझना ।
(ii) तथ्यों के विभिन्न रूपों की व्याख्या करना ।
(iii) प्रसिद्ध इतिहासकार कार्ल बेकर एवं ई. एच. कार की तथ्यों संबंधी अवधारणा क विश्लेषण । (iv) तथ्यों के विभिन्न स्रोतों की व्याख्या करना ।
(iv) तथ्यों की व्याख्या, मूल्य एवं वस्तुपरकता को समझना ।

21.1 प्रस्तावना

तथ्य मूलत: वैचारिक -यथार्थ से संबन्धित है । जो विचार जितना सत्य के निकट है वह विचार उतना ही तथ्य परक कहलाएगा । प्राकृतिक विज्ञान से संबंधित ज्ञान में तथ्य प्रयोगधर्मी हो सकते हैं किंतु सामाजिक विज्ञान में ज्ञान के क्षेत्र बगैर तर्क प्रमाण के सिद्ध नहीं हो सकता ।

इतिहास का ज्ञान भी विज्ञान की इसी दूसरी श्रेणी में आता है । अत : इतिहास में तथ्य ऐतिहासिक –प्रक्रियाओं को समझने अथवा जानने के आधार मत माध्यम हैं ।

21.2 इतिहास में तथ्यों का इतिहास:

इतिहास के तथ्यों के बारे में सर्वप्रथम विचार 19वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ । उसके पूर्व इस ओर ध्यान नहीं जाने का मूल कारण था कि इतिहास को शाम श्रेणी में गिना जाता था किंतु इतिहास को विज्ञान के अंतर्गत सम्मिलित करने वाले सामाजिक' वैज्ञानिकों ने इतिहास के लेखन में तथ्यात्मक को ही लेखन का शुद्ध पैमाना माना । उन्नीसवीं शती के अधिकांश इतिहासकार ग्राडग्रिंड नामक विद्वान के इस कथन से सहमत थे कि ".... जीवन में हमें तथ्यों की आवश्यकता है.... मुझे (हमें) तथ्य चाहिए । इस प्रकार के इतिहास या चिंतकों की धारणा थी कि इतिहासकार का दायित्व इतिहास को उसी रूप में प्रस्तुत करना है । जैसा कि वह वास्तव में है । कैंब्रिज मार्डन हिस्ट्री के प्रथम संस्करण के लेखन का दायित्व स्वीकारते हुए अक्टूबर 1896 में इतिहासकार एक्टन अपनी रिपोर्ट में लिखता है..... " हम हर पाठक के लिए अंतर्राष्ट्रीय शोध के परिपक्व परिणाम तथा सभी दस्तावेज सुलभ कर सकेंगे।" जर्मन, फ्रांस तथा ब्रिटेन के इतिहासकार अतियथार्थवादी भावना से प्रभावित होकर इतिहास के सत्य लेखन की ओर उन्मुख हुए । ब्रिटेन में अनुभववादी दार्शनिक –विचार धारा के समर्थक जॉन लॉक से बर्ट्रेन्ड़ रसैल तक यह मानते थे कि जिस प्रकार इन्द्रिय अनुभव मनुष्य के मानस पर प्रभाव डालने वाला बाह्य तत्व है उसी प्रकार तथ्य भी अध्ययन करने वाले पर बाहर से प्रभाव डालने वाले तत्व हैं । अत: ऐसे दार्शनिकों के अनुसार तथ्य मानवीय चेतना से स्वतंत्र यथार्थ प्रस्तुत करने वाले होते हैं । इतिहास को विज्ञान का अंग सिद्ध करने के लिए प्रत्यक्षवादी संप्रदाय के इतिहासकारों एवं चिन्तकों ने तथ्य सम्प्रदाय का पुरजोर समर्थन किया। उनका कहना था– पहले तथ्यों को जांचो –परखो, तत्पश्चात इनसे निष्कर्ष निकालो । इस तरह 19वीं शताब्दी में इतिहास की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लगना आरम्भ हो गया क्योंकि इतिहास की प्रक्रिया मात्र प्रयोगों की उपज नहीं है, अपितु वह तत्कालीन समाज की अवधारणाओं से भी प्रभावित होती है । ब्रिटिश इतिहासकार के इस विश्वास के अनुसार कि 'इतिहास का अर्थ स्पष्ट और स्वत: प्रमाणित होता है,' का उत्तर यही हो सकता है कि इतिहास एक जड़ विज्ञान है किन्तु यह सत्य नहीं है । प्रसिद्ध तथ्यवादी विद्वान लियोपाल्ड फॉन राके अनुसार यदि तथ्य इतिहासकार की उपज है तो इतिहास का अर्थ ईश्वर की कृपा पर छोड़ देना चाहिए । ऐसे तथ्यवादी वातावरण में इतिहास–दर्शन पर विचार करना ऐतिहासिकता से परे था। यद्यपि 19वीं शताब्दी का उदारवादी दृष्टिकोण तथ्यवादी विचारकों से कुछ मित्र था फिर भी उनके मत में प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य अच्छी प्रकार करता चले तो अदृश्य हाथ अवश्य ही विश्व का संतुलन बनाये रखेंगे ', का दृष्टिकोण अहस्तक्षेपवादी आर्थिक सिद्धान्त के अनुरूप था । इस प्रकार इतिहास में तथ्य की अवधारणा का श्री गणेश मुख्यत: उन्नीसवीं शताब्दी के विज्ञानवादी विचारधारा की देन है।

21.3 ऐतिहासिक तथ्य क्या है?

सभी तथ्य ऐतिहासिक–तथ्य नहीं होते हैं और न ही इतिहासकार उन्हें तथ्यों के रूप में स्वीकार करता है । अतीत या वर्तमान असंख्य तथ्यों से भरा हुआ है । पर इतिहास की दृष्टि से जिन तथ्यों को महत्वपूर्ण माना जाता है उनकी अलग विशेषताएँ होती हैं । इतिहास में कुछ

मूलभूत तथ्य होते हैं जो सभी इतिहासकारों के लिए समान हैं । दूसरे शब्दों में यह इतिहास की रीढ़ होते हैं । इनसे हटकर कई सामान्य तथ्य हैं जो कि इतिहासकार के लिए कच्चे माल की तरह होते हैं, जिनको इतिहासकार द्वारा स्थापित करने के पश्चात् वह विशिष्ट तथ्य की श्रेणी में आने लगते है। ऐसे विशिष्ट तथ्य व्याख्या, विश्लेषण और व्यवहार की अनवरत प्रक्रिया द्वारा मूलभूत तथ्यों का स्थान ग्रहण कर लेते हैं अर्थात ऐसे तथ्यों का साधारणीकरण हो जाता है । इस प्रकार तथ्यों की तीन श्रेणियाँ निर्धारित की जा सकती है – (1) सामान्य तथ्य, (2) मूलभूत तथ्य और (3) विशिष्ट तथ्य ।

21.3.1 सामान्य तथ्य

इस प्रकार के तथ्य किसी भी प्रकार के सादृश्य घटना, चरित्र, साहित्य, आदि में निहित होते हैं । किन्तु यह सभी तथ्य इतिहासकार के लिये 'मछुआरे की पटिया पर पड़ी मछलियों की तरह होते हैं । ' इतिहासकार ई. एच. कार ने ऐसे ही एक तथ्य का उदाहरण देते हुए लिखा है कि स्टैर्ली ब्रिज वेक्स में 1850 ई० में अदरख की रोटी बेचने वाला एक खोमची मामूली सी बात पर कुद्ध भीड़ द्वारा पीट–पीट कर मार डाला गया था ', जिसे स्वसाक्ष्य (self evidence) के रूप में लार्ड जार्ज सैंगर द्वारा अपनी संस्मरणात्मक पुस्तक सेवेंटी इयर्स अ शोमेन, 1826 द्वि. सं. पृ. 188– 189 में उद्धृत किया गया । सत्रहवीं शताब्दी की इस घटना को बीसवीं सदी में इतिहासकार डॉ० किट्सन क्लार्क द्वारा दि मेकिंग ऑफ विक्टोरियन इंग्लैंड में संदर्भ के रूप में प्रस्तुत किया तो क्या हम इसे ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार कर लेंगे? इसका प्रत्युत्तर कार के शब्दों में " यह एक स्थापित ऐतिहासिक तथ्य बन सकता है (और) इसके विपरित ऐसा भी हो सकता है कि कोई इसे (तथ्य को) उठाए ही नहीं और तब यह अतीत की उसी अनैतिहासिक तथ्यों की भीड़ में जा मिले, विस्मृत हो जाए । " इस तरह हम पाते हैं कि प्रत्येक सामान्य तथ्य ऐतिहासिक तथ्य नहीं है जब तक कि इतिहासकार "ऐसी मछलियों को एकत्रित कर, घर ले जाकर, पकाकर अपनी मन पसंद की शैली में परोस न दें । यद्यपि कार ने "शैली " को " व्याख्या" के स्वरूप में देखने का प्रयत्न किया है । किन्तु हमारी दृष्टि से सामान्य तथ्य में यदि वर्तमान की उपयोगिता विद्यमान नहीं है तो ऐसा तथ्य मात्र सूचना ही कहलायेगी । और ऐसी इतिहास अनुपयोगी सूचनाएं सामान्य तथ्य के रूप में अनैतिहासिक मानी जाती रहेंगी ।

21.3.2 मूलभूत तथ्य

इतिहासकारों में जो तथ्य " सामान्य ज्ञान " के रूप में प्रतिष्ठित हैं उन्हें मूलभूत तथ्य की श्रेणी में रखा जाता है । उदाहरण के रूप में 20 अप्रैल 1526 ई० को भारतीय इतिहास में पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ, जिसमें बाबर द्वारा इब्राहिम लोदी को पराजित किया गया, यही घटना का मूलभूत तथ्य है, न कि बाबर के पास 8, 12 या 25 हजार सेना और इब्राहिम के पास एक लाख सेना की भ्रमित सांख्यिकी । जैसाकि

हाउसमान ने कहा है 'यथावत होना इतिहास एवं इतिहासकार का दायित्व है, कोई गुण नहीं " । यथातथ्य ही प्रासंगिक मूलभूत तथ्य है, जिनको जानना प्रत्येक इतिहासकार के लिए आवश्यक है । यद्यपि ऐसे तथ्य परम सत्य हो, आवश्यक नहीं क्योंकि " तथ्य बोरे की तरह होते हैं, जब तक उनमें कुछ भरा न जाए वे खड़े नहीं होते ", ऐसे बोरे को काल अवधारणा के अनुरूप तर्कयुक्त खाली करने पर मूलभूत तथ्य भी अनैतिहासिक हो सके हैं । इस प्रकार मूलभूत तथ्य इतिहासकारों द्वारा स्थापित तथ्य हैं जिनका इतिहास में सार्वजनीकरण कर दिया गया है । मूलभूत तथ्य के बारे में प्रो. जी. बैरेकलों लिखते हैं कि यह " स्वीकृत फैसलों का एक सिलसिला है " अर्थात् ऐसे तथ्य जो सभी इतिहासकारों को प्रभावित करते हैं । स्वीकृत तथ्यों के रूप में इतिहास प्रतिष्ठित हो जाते हैं ।

21.3.3 विशिष्ट तथ्य

मुगल सम्राट हुमायूं एवं शेर खाँ के मध्य हुए 1539 ई० के चौसा युद्ध में मुगल सेना की पराजय के पश्चात् हुमायूं भागने के लिए अपने घोड़े सहित नदी में कूद पड़ा और सम्भव था कि वह नदी की तेज धारा में बह जाता, किन्तु भाग्य से निजाम नामक एक भिश्ती ने अपनी मशक की सहायता से हुमायूं को नदी के दूसरे छोर पर पहुंचा दिया । यह वर्णन हमें अबुल फजल की पुस्तक अकबर नामा, भाग – एक – के पृ. 159 पर मिलती है । पढ़ ने या सुनने में इसकी कोई महत्ता प्रकट नहीं होती, क्योंकि किसी भी दयावान व्यक्ति द्वारा ऐसे संकट में सहायता करना परम धर्म माना जाता है । किन्तु इतिहासकार के लिये यह तथ्य ऐतिहासिक घटना के रूप में महत्त्वपूर्ण हो गया । अबुल फजल द्वारा किये गये इस वर्णन का उल्लेख उसके परवर्ती कई इतिहासकारों द्वारा किये जाने के पृष्ठ में उस घटना का भविष्य की घटनाओं पर उसके प्रभाव अथवा परिणाम का औचित्यीकरण था । इस कारण इतिहासकार ई. एच. कार का यह कहना कि "तथ्य तभी बोलते हैं जब इतिहासकार उन्हें बुलाता है " सर्व था असत्य है । यह सही है कि "किन तथ्यों को इतिहासकार किस कम और संदर्भ में मंच पर उतारेगा । " इतिहासकार द्वारा लिखी गई सभी बातें ऐतिहासिक तथ्य नहीं होती बल्कि विश्लेषण और व्याख्या द्वारा विशिष्ट तथ्य ही ऐतिहासिक तथ्य कहलाते हैं । अब हमें यह विचार करना है कि ई. एच. कार के अनुसार " तथ्यों को स्थापित करने की आवश्यकता तथ्यों के भीतर निहित किसी गुण पर आधारित नहीं होती बल्कि इतिहासकार के पूर्व निर्धारित निर्णय में होती है ", विशिष्ट तथ्यों के प्रसंग में सही है? सामान्यतया तथ्य का विशिष्ट गुण जांच परख करने के पश्चात् उसी प्रकार लगता है जैसा कि तपने के पश्चात् कुन्दन की क्रान्ति अथवा तथ्य का विशिष्ट गुण ही इतिहासकार के लिये तर्क द्वारा निर्णय बनाता है, न कि " पूर्व निर्धारित निर्णय " । ऐसा निर्णय ही ऐतिहासिक तथ्य को निरन्तर स्थापित करते हुए उसे मूलभूत तथ्य में

परिवर्तित कर देता है । यह तथ्य एक प्रकार से मूल्य धारित तथ्य है, जिनका उतार चढ़ाव इतिहासकार द्वारा व्याख्या के माध्यम से किया जा सकता है ।

उल्लेखित तथ्यों के प्रकार का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है स भी तथ्य ३ तिहासिक नहीं होते, अपितु विशिष्ट तथ्यों के चयन कार्य–कारण सम्बन्ध, उपयोगिता, विश्लेषण, व्याख्या, संदर्भ निरन्तरता आदि की अनुसंधान विधियों द्वारा इतिहास में स्थान ग्रहण करते हुए मूलभूत तथ्यों की श्रेणी में स्थापित अभिकथन ही ऐतिहासिक तथ्य कहलाते हैं ।

21.4 कार्ल बेकर की अवधारणा

प्रसिद्ध अमेरिकन इतिहासकार प्रो. कार्ल बेकर ने ऐतिहासिक तथ्य के बारे में विचार प्रकट किया है कि " कोई कार्य अथवा घटना, कोई भी संवेग जिसकी अभिव्यक्ति हुई है, कोई भी यथार्थ अथवा मिथ्या विचार जो कि अतीत कालिक मनुष्य से संबन्धित है, इतिहासकार के लिए अध्ययन के विषम हैं और वह इनमें रुचि भी रखता है । किन्तु, वह इन वस्तुस्थितियों से साक्षात्कार नहीं करता; अपितु वह केवल घटना के विषय में प्राप्त विवरण का ही प्रत्यक्षीकरण करता है । " इस प्रकार विनष्ट घटना के विद्यमान विवरण ही व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए ऐतिहासिक तथ्य बन जाते हैं । बेकर के अनुसार ऐतिहासिक तथ्य अतीतकालिक घटना नहीं अपितु एक प्रतीक है जो हमें कल्पना द्वारा उसके पुनर्निर्माण में समर्थ बनाती है ।

सभी वास्तविक घटना ऐतिहासिक तथ्य हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बेकर लिखता है कि ऐतिहासिक तथ्य का स्थान व्यक्ति के मस्तिष्क में है; इसकी पुष्टि के लिये कार्ल बेकर द्वारा अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन की हत्या से संबंधित घटना का उदाहरण दिया गया है – 14 अप्रैल 1885 ई० को वाशिंगटन में फोर्ड नाट्यशाला के अन्दर जब लिंकन की हत्या घटित हुई तब यह एक वास्तविक घटना थी, किन्तु इसका आज पुनः प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं है । किन्तु इसका तात्कालीन विवरण, सम–सामयिक समाचार–पत्रों, दैनदिनियों तथा पत्रों इत्यादि से प्राप्त साक्ष्य इतिहासकार के लिए एक अप्रत्यक्ष चित्र बनाता है; ऐसे धूमिल (अप्रत्यक्ष) चित्र अथवा तथ्य इतिहासकार की कल्पना द्वारा ऐतिहासिक तथ्य के रूप में उभरता है । इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य बेकर के सिद्धान्त में वस्तुतः ही असम्भव है ।

इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिये उसने लिखा है कि यह तथ्य शुद्धतः वस्तुनिष्ठ नहीं माने जा सकते क्योंकि

(1) इतिहासकार किसी भी घटना को संपूर्णतः प्रस्तुत नहीं कर सकता । 19 वीं शताब्दी के तथ्यवादी इतिहासकारों की मान्यता थी कि " इतिहासकार का दायित्व इतिहास को सिर्फ उस रूप में दिखाना है, जैसाकि वह सचमुच था अथवा उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्य अपने आप बोलेंगे " सही नहीं है । इतिहासकार अपनी ओर से केवल मस्तिष्क रूपी संवदेनशील तश्तरी प्रस्तुत करेगा जिस पर वस्तुनिष्ठात्मक तथ्य अपने अर्थों का चिन्हांकन करते चलेंगे। ऐसा विचार अब भी इतिहासकार की भाषा में होता है । इतिहासकार की समझ से उनके अलग – अलग अर्श भी हो सकते हैं । इस तरह ऐ तिहासिक तथ्य सर्वथा सत्य नहीं हैं ।

(2) चूंकि इतिहास शुद्धतः विज्ञान नहीं है, इसलिए इतिहास की घटनाओं का निष्कर्ष परीक्षण सिद्ध नहीं हो सकता । इतिहासकार व्यक्तिगत समीकरण को नहीं हटा सकता, क्योंकि

उसका बाह्य जगत के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता । घटनाओं की पुनरावृत्ति इतिहासकार के लिए संभव नहीं । अत: इतिहास की घटना भिन्न –मित्र व्यक्ति के मस्तिष्क द्वारा भिन्न –भिन्न स्वरूप में प्रकट हो सकती है, इसीलिए प्रत्येक क पीढ़ी उसी इतिहास को नए रूप में लिखती है । अतीत विषयक हमारी अवधारणाओं वर्तमान से प्रभावित होती हैं । इस दृष्टि से वर्तमान की आवश्यकताएं और उद्देश्य इस अवधारणा का रूप तय करते हैं । बेकर के इस संदर्भ को हम भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले दो अर्थों – विद्रोही एवं आन्दोलनकारी, के दृष्टांत से समझ सकते हैं । साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने स्वतंत्रता सेनानियों को विद्रोहियों के रूप में इतिहास का तथ्य बनाया है। इस प्रकार ऐतिहासिक निरन्तरता के सिद्धान्त के अनु सार ऐतिहासिक तथ्य परिवर्तनशील हैं ।

(3) ऐतिहासिक तथ्य उन्हीं के लिए महत्त्वपूर्ण है जो इतिहास का ज्ञान रखते हैं । किन्तु कोई भी व्यक्ति ऐतिहासिक ज्ञान से विहीन नहीं है; वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अतीत की घटनाओं का कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य रखता है, जो कि उसके वर्तमान के उद्देश्यों के लिए पर्याप्त है । इतिहासकार जनसाधारण में व्याप्त व्यावहारिक तथ्यों को अपनी व्याख्या और विश्लेषण द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से शुद्ध बनाने का प्रयास करता है । ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों के चयन भी वह समाज द्वारा सिखाये गये अनुभव व तरीकों से ही करता है । इस माने में ऐतिहासिक तथ्य सत्य और कल्पना के सुविधाजनक सम्मिश्रण हैं ।

21.5 ई. एच. कार का विवेचन

कार के अनुसार इतिहास का अध्ययन करते समय केवल यह देखना पर्याप्त नहीं है कि इसकी सूचनाएँ तथ्य पूर्ण हैं अथवा नहीं वरन्, यह देखा जाना चाहिए कि इसमें वर्णित तथ्यों के चुनाव की क्या प्रक्रिया थी, जिसके द्वारा असंख्य सामान्य तथ्यों के मध्य से केवल उन्हीं तथ्यों के चुना गया और ऐतिहासिक तथ्यों को स्थान दिया गया । इस रूप में कार इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत किसी भी तथ्य को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करते हुए मानते हैं कि "सुदूर अतीत से संबंध रखने वाले जिन तथ्यों का वर्णन तत्कालीन इतिहासकारों ने जिस रूप में किया, वही तथ्य हमारे लिए प्रामाणिक है, क्योंकि इन्हें मिथ्या अथवा अपूर्ण सिद्ध करने हेतु हमारे सम्मुख प्रमाण विद्यमान नहीं हैं । अपने मत के समर्थन में कार ने दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं : –

(1) पांचवी शती ईसा पूर्व के यूनान का इतिहास एथेंस नगर मैं रहने वाले एक छोटे से दल ने प्रस्तुत किया जो ऐथेंसी दृष्टिकोण लिये हुये हैं । इस इतिहास से स्पार्टा, कोरिथिया अथवा थिबी नागरिकों की दृष्टि में यूनान की तस्वीर क्या थी; वह भी विदित नहीं होता । अत: हमें इतिहास में उन्हीं तथ्यों का पता लगता है जो जाने – अनजाने एक विशेष दृष्टिकोण वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत किये गये, जिसका कि वे समर्थन करते थे और भविष्य के लिए वह जो दृष्टिकोण छोड़ जाना चाहते थे ।

(2) मध्यकालीन इतिहास पर आधुनिक ग्रंथों में हम पढ़ते हैं कि मध्य युग के लोग धर्म से गहरे जुड़े हुए थे । कार लिखता है कि " हमें इसका पता कैसे चले कि क्या सच है । " क्योंकि मध्यकालीन इतिहास के तथ्य के रूप में हमें जो कुछ मिलता है, उसका चुनाव इतिहासकारों की ऐसी पीढ़ियों के द्वारा किया गया था, जिनके लिये धर्म का सिद्धान्त

और व्यवहार एक पेशा था । उन्होंने जिसे महत्त्वपूर्ण तथ्य माना उसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में लिखा गया और शेष को नष्ट कर दिया अथवा वह नष्ट हो गया ।

इस प्रकार प्रो. कार की दृष्टि में कोई भी तथ्य तब ऐतिहासिक तथ्य बनता है, जबकि स्वयं इतिहासकार उनका चयन कर उसे महत्व प्रदान करता है ।

21.6 तथ्यों का निर्वचन अथवा निर्धारण

यह उल्लेख किया जा चुका है कि तथ्य चयन उसके क्रम और संदर्भ का प्रस्तुतीकरण इतिहासकार के निर्णय पर आधारित होता है । इस प्रकार तथ्यवादी इतिहासविदों की यह उक्ति की "तथ्य बोलते हैं ", असंगत लगने लगती है । क्योंकि तथ्य तभी बोलते हैं जबकि उनको अर्थ और स्वर दिया जाता है । यह कार्य इतिहासकार के अतिरिक्त कोई नहीं करता; इस माने में वह तथ्यों का नियामक है । इतिहास–दार्शनिक रसल बी० नये के अनुसार इतिहासकार केवल तथ्य से ही सम्बन्ध नहीं रखता वरन् अनुभव पर भी विचार करता है; वह तथ्य को जीवन के गुण, प्रवाह स्वभाव और अर्थ में अपनी आन्तरिक दृष्टि के साथ जोड़ देता है । इस प्रकार वह (इतिहासकार) तथ्य का चयन ही नहीं करता अपितु प्रबन्ध और व्याख्या कर उसे इतिहास संगत बनाता है । अल्वर्ट बुशनेल हर्ट लिखता है कि " तथ्य के रूप में तथ्य उसी प्रकार इतिहास नहीं है जैसे कि बटालियन के रूप में भर्ती किये गये जवान; सेना नहीं है । " इन जवानों को प्रशिक्षण के पश्चात् ही सैनिक का दर्जा दिया जाता है । अत: तथ्य का भी ऐसी ही प्रक्रियाओं द्वारा निर्धारण कर इतिहास में स्थान दिया जाता है । तथ्य का निर्वचन और निर्धारण होता है तो इसकी प्रक्रिया पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है । यद्यपि इसके संकेत हम उल्लेखित अवतरणों में कर चुके हैं, किन्तु निर्धारण प्रक्रिया को भली–भांति समझने हेतु विस्तार से अध्ययन करेंगे । इस क्रम में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि तथ्यवादी विचारधारा में " इतिहासकार के मन्तव्य तथ्य को भ्रष्ट कर देते हैं " जबकि तथ्य उनके अनुसार पवित्र है और पवित्र ही रहने चाहिए । इसलिये कहा भी जाता है कि " तथ्य अनुभव के वह आकड़े होते हैं जो निष्कर्ष से भिन्न होते हैं । " अनुभववादी इतिहासकारों के इस कथ्य का समर्थन सर जार्ज क्लार्क ने भी किया है, उसके मत में " तथ्य एक गुठली है जिसके चारों और विवादास्पद व्याख्या का गूदा है । अर्थात् तथ्य का निर्धारण नहीं होता, अपितु व्याख्या का निर्धारण होता है । तो क्या इतिहासकार के मन्तव्य, आकांक्षा, उद्देश्य तथ्यों के निर्धारण में सहयोगी नहीं होते, जबकि व्याख्यावादी इतिहासकार इन्हें इतिहास लेखन की महत्ता भूमिका के रूप में स्वीकार करते हैं ।

21.7 तथ्यों के स्रोत

इतिहासकार के पास तथ्य चल कर नहीं आते हैं, बल्कि इतिहासकार को यह तथ्य प्राप्त करने के स्रोत ढूंढने पड़ते हैं । यह स्रोत निम्न प्रकार के हो सकते हैं ।

21.7.1 वैज्ञानिक स्रोत

पुरातत्व की सामग्री इतिहासकार के लिए वैज्ञानिक अथवा मूर्त स्रोत के रूप में उपलब्ध होती है। प्रो० कार ने ऐसी संग्रहित सामग्री के स्रोत ग्रंथ को इतिहास के सहायक

विज्ञान के रूप में उल्लेख किया है; यथा – वास्तुकला शास्त्र, शिलालेख, मुद्राशास्त्र, कलाक्रम–विज्ञान आदि । हमने हमारी पुस्तक " राजस्थान के इतिहास के स्रोत " में ऐसे स्रोत को प्रायौगिक स्रोत की श्रृंखला में रखा है। वैज्ञानिक अथवा प्रायौगिक स्रोत के तथ्य भी वैज्ञानिक होते हैं, जिनका निर्धारण करने में प्रशिक्षित इतिहासकार को विवेक की जटिल प्रक्रियाओं का सहारा नहीं लेना पड़ता है ।

21.7.2 अवैज्ञानिक स्रोत

पुरालेख, चित्रांकन, प्राचीन इतिहास की पाण्डुलिपि, पुस्तकें आदि अवैज्ञानिक अमूर्त स्रोत की श्रेणी में आते हैं । ऐसे स्रोतों से उपलब्ध तथ्यों का अन्य प्राप्त के तथ्यों से तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना पड़ता है । तब कहीं यह प्रामाणिक स्रोत के रूप में स्थापित होते हैं । इन स्रोतों को प्रामाणिक स्रोत के रूप में स्थापना करने के लिए इतिहासकार का " तर्क -विवेक " निष्पक्ष होना आवश्यक है । अन्यथा साक्ष्य की निर्बलता का परिणाम इतिहासकार के मिथ्या इतिहास को भुगतना पड़ेगा।

21.7.3 साहित्यिक स्रोत

ऐसे साहित्य स्रोत हमारे माने में ऐतिहम साहित्य स्रोत भी कहे जा सकते हैं; यथा– रामायण, महा भारत, पुराण अथवा ऐसी ही इतिहास – चरित्र संस्था, समाज आदि को दिग्दर्शित करने वाली साहित्यिक कृतियां । यद्यपि ऐसे स्त्रोतों में तथ्य कम और कल्पना अधिक होती है, फिर भी स्फुट तथ्यों को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से छांट कर उनका तर्क, तुलना एवं क्रम के अनुरूप स्थापित करना ऐसे स्रोतों के तथ्यों को अन्य स्रोतों के पूरक–स्रोत का महत्व प्रदान करते हैं । सामाजिक इतिहास की दृष्टि से यह स्त्रोत तत्कालीन " सामाजिक दर्पण " का वस्तुनिष्ठ प्रतिबिम्बित हमें दिखलाते हैं ।

उपरोक्त तीनों प्रकार के स्रोत सम्पूर्ण रूप में ऐतिहासिक तथ्य नहीं होते, बल्कि विवेक युक्त विश्लेषण की किया द्वारा इतिहास संगत विशिष्ट तथ्यों का ही इतिहासकार इनमें ध्यान रखता है। वह प्रत्येक विशिष्ट (particular) के बारे में उचित और अनुचित का निर्णय करने के पश्चात् तथ्यों की पंक्ति में इन्हें विशिष्टता देता है । यह हो सकता है कि इतिहासकार द्वारा चयनित तथ्य सर्वथा सत्य नहीं हो, किन्तु सत्य के अधिक निकट है, ऐसा उसे निश्चित हो जाना चाहिए । विशिष्ट तथ्यों की परिभाषा को हमने सामान्य, मूलभूत तथ्य विशिष्ट के कम में विवेचित करने का प्रयत्न किया है, जिसके अनुसार तथ्य का विशिष्ट गुण ही उसे इतिहास हेतु मूल्यवान बनाता है । किन्तु काल–क्रम के अनुसार इनके मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहता है, जैसे कि जौहर किसी युग में विशिष्ट तथ्य रहा था किन्तु आज वह अपनी उपयोगिता खो चुका है । अत: विशिष्ट तथ्यों में भी इतिहासकार को वर्तमान के अनुरूप 1, सार्थक या मूल्यवान और 2. निरर्थक या अनुपयोगी तथ्यों का भेद ध्यान में रखते हुए तथ्यों का निर्धारण करना पड़ता है ।

अब यह प्रश्न उठता है कि तर्क अथवा साक्ष्य द्वारा चयनित तथ्य विवाद से परे होते हैं? इसका उत्तर प्रो० कार के इन कथनों से अधिक स्पष्ट हो जाता है कि "इतिहास के तथ्य जीवित मछलियों की तरह हैं जो एक विशाल तथा अगाध समुद्र में तैर रही हैं । इतिहासकार के

हाथ में कौन सी मछलियां आएंगी, यह कुछ तो संयोग पर निर्भर करता है । मगर मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि वह समुद्र के किस हिस्से में मछली मारने का इरादा रखता है तथा किस ढंग के काँटों का इस्तेमाल करता है । कुल मिलाकर इतिहासकार जिस प्रकार के तथ्यों की खोज कर रहा है वह उसी प्रकार के तथ्यों को पाएगा । " इससे यह स्पष्ट होता है कि तथ्यों के निर्धारण में इतिहासकार की अपनी भूमिका उल्लेखनीय होती है । वह उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जो दृष्टिकोण वह भविष्य में छोड़ जाना चाहता है । इसे हम औरंगजेब की धार्मिक नीति द्वारा आसानी से समझ सकते हैं कि जो इतिहासकार उसे कट्टर और धर्माध बतलाते हैं उसके तथ्य चयन एवं जो उसे राजनीतिक वातावरण से हटा कर सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत उदारवादी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, उन इतिहासकारों के चयनित तथ्य में हमें विभिन्नता मिलती है ।

इस प्रकार इस तथ्य भिन्नता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध तथ्य की व्याख्या से जुड़ जाता है । व्याख्या किसी उद्देश्य से या एक विशेष इतिहास – दर्शन के अनुसार की जाती है । एक वैज्ञानिक प्रकृति–धारक इतिहासकार अपने उद्देश्य तथा इतिहास दर्शन को पाठकों से छिपाता नहीं है, वरन् वह अपनी शैली को स्पष्ट कर देता है। शायद इसी रूप में उसका यह प्रयास अध्ययन की वस्तुपरकता को ही प्रतिष्ठित नहीं करता, वरन् इतिहास की विकास गति को भी आगे बढ़ाता है । ऐतिहासिक तथ्य के रूप में अध्ययन की वस्तुपरकता प्रो. कार के मत में व्याख्या के प्रश्न से संबद्ध रहती है और व्याख्या का यह तत्व इतिहास के हर तथ्य से संलग्न रहता है।

21.8 तथ्यों की व्याख्या

व्याख्या ही ऐतिहासिक तथ्यों का अर्थ प्रदान करती है । इससे अर्ध जहां प्रासंगिक बनता है, उसके आधार पर वस्तुस्थिति स्पष्ट होती है तथा अन्य तथ्यों के साथ उसका अन्त: संबंध दिखलाई देता है । इस प्रकार इतिहास को समझने के लिए व्याख्या सशक्त माध्यम के रूप में उपयोगी सामग्री प्रदान करती है । प्रो० कार ने इसको स्पष्ट करते हुये लिखा है कि "व्याख्या वस्तुत: इतिहास को जीवन देने वाले रक्त के समान है । " किन्तु कार इतिहास दार्शनिक आर० जी० कॉलिन वुड ने शुद्धत: व्याख्यावादी विचार से सहमत नहीं है । इतिहासकार के सम्मुख संबंधित विषय के सभी ज्ञात और ज्ञातव्य तथ्य रहने चाहिए, तभी वह व्याख्या को पर्याप्त व्यावहारिक स्वरूप प्रदान कर सकता है ।

व्याख्या के स्वरूप और उसकी प्रकृति पर इतिहासकार की मन: स्थिति का भी किसी न किसी तरह निर्णायक प्रभाव रहता है । यथा – सल्तनतकालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी की तारीख–ए–फीरोजशाही में उसकी धार्मिक भावना का । अत: अध्येता को चाहिए कि वह तथ्यों के अध्ययन करने के पहले इतिहासकार का अध्ययन करें अथवा उसकी लेखन–शैली, उसके इर्द – गिर्द के वातावरण तथा उसकी मानसिकता की जांच–परख करें । प्रो० कार ने इस सच्चम्हा में लिखा है कि " जब आप इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ें तो हमेशा कान लगा कर उसके पीछे की आवाज को सुने। अगर आपको कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती तो आप एकदम बहरे हैं अथवा आपका इतिहासकार एकदम बोदा है । "

प्रसिद्ध इतिहास दार्शनिक बेनेदेत्तों क्रोचे ने अपनी पुस्तक " इतिहास सिद्धांत तथा व्यवहार " में इतिहास को सम–सामयिक इतिहास के धरातल पर अवलोकन करते हुए इतिहास लेखन में विवरण के स्थान पर तथ्यों के मूल्यांकन पर बल दिया हैं । उसके मत में इतिहास का

उद्देश्य " वर्तमान की आंखों से तथा वर्तमान की समस्याओं के प्रकाश में अतीत को देखना" अर्थात तथ्यों का आधुनिक आवश्यकता के अनुरूप मूल्यांकन करना है । इस प्रकार क्रोचे के विवरण का स्वरूप तथ्य है वहां मूल्यांकन के मायने व्याख्या है । क्रोचे के वैचारिक शिष्य कालिंगवुड के मत में " इतिहासकार जिस अतीत का अध्ययन करता है वह मृत अतीत नहीं वरन् वर्तमान में जीवित रहता है । क्योंकि विचार का इतिहास होता है। " अत: इतिहासकार जिस इतिहास का अध्ययन करता है । उसके विचारों को वह अपने मन में पुनर्निर्माण करता है । पुनर्निर्माण की यह प्रक्रिया इतिहासकार के द्वारा किये गये तथ्य–निर्वचन और व्याख्या निर्धारित करती हैं । तथ्यों की व्याख्या के महत्व को स्वीकार करने वाले कालिंगवुड के अन्य समर्थकों में डिल्थे ओर प्रो० ओकशाट भी हैं । ओकशाट के अनुसार " इतिहास इतिहासकार का अनुभव है; जिसका निर्माण इतिहास लेखन द्वारा वह स्वयं करता है । "इस रूप में इतिहास–लेखन जहां व्याख्या से सम्बन्धित है वहां अनुभव तथ्यपरकता से। अत: इतिहास में तथ्य और व्याख्या एक दूसरे की पूरक प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया के द्वारा ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण या उद्देश्य का निर्माण होता है ।

21.9 तथ्य एवं मूल्य

इतिहास का प्रयोजन नापने के लिये हमें अध्ययनगत इतिहास का उद्देश्य अथवा उसमें अन्तर्निहित मूल्य को परखना होगा । वैसे तथ्यों के साथ–साथ मूल्य भी प्रतिमान के रूप में परिलक्षित होते हैं, किन्तु कभी विशेष काल एवं देश के परिवेश में मूल्य बदल जाते हैं, तो उनके साथ तथ्य भी अपना अर्थ बदल देते हैं । किन्तु इस अन्तर क्रिया में व्याख्या की उपस्थिति एवं वर्तमान के आदर्श की प्रमुख भूमिका रहती है । इतिहासशास्त्री प्रो. कार लिखता है कि "हमारे परिवेशगत तथ्यों की हमारी तस्वीर हमारे मूल्यों द्वारा बनती है अर्थात् उन श्रेणियों के द्वारा जिनके माध्यम से हम मूल्यों तक पहुंचते है । और यह तस्वीर एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है "..... इस प्रकार " मूल्य तथ्यों में प्रवेश कर उनके आवश्यक अंग बन जाते हैं । " दास प्रथा, रंग भेद, बाल श्रम का शोषण आदि किसी समय ऐतिहासिक तथ्य थे, जिन्होंने इन परिस्थितियों को सम्भव बनाया था । किन्तु आधुनिक मूल्य के अनुसार ऐसे तथ्य अनैतिक और अमानवीय दृष्टि से वर्तमान में प्रासंगिक परिवर्तन का स्वरूप धारण कर वांछित उद्देश्य को स्थापित कर रहे हैं । भारतीय समाज के अतीत के तथ्यों में जाति–प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह आदि उचित माने जाते थे, किन्तु आवश्यकतानुरूप मूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप ऐसे तथ्यों के अर्थ, यथा– असामाजिक अनुचित, पापमुक्त, शोषण आदि में परिवर्तित हो गए । इस प्रकार तथ्यों के साथ उससे संशलिष्ट मूल्यों का बदल जाना प्रकट करता है कि "तथ्य और मूल्य अन्योन्याश्रित हैं । " ई. एच. कार के अनुसार "मूल्यों तथा तथ्यों की परस्पर निर्भरता एवं किया–प्रतिक्रिया के माध्यम से ही इतिहास में प्रगति की उपलब्धि होती है । वस्तुनिष्ठ इतिहासकार वही है जो इस अन्योन्याश्रित प्रक्रिया में गहरा उतरता है । " तथ्य, व्याख्या और मूल्य के मध्य संतुलन स्थापित रखने वाला इतिहास ही वस्तुपरक इतिहास है । क्योंकि गतिहीन इतिहास में इनका भेदभाव किया जा सकता है, किन्तु ऐसा इतिहास अर्थहीन ही होगा । वस्तुत: इतिहास गति, प्रगति और परिवर्तन में निहित होता है।

इतिहास में मूल्य व्यवस्था का निर्णय भी इतिहासकार के वर्तमान परिवेश से संबद्ध होता है जो कि प्राचीन से वर्तमान के तुलनीय दृष्टिकोण द्वारा नैतिक और मानवीय तथ्यों में व्याख्या

द्वारा व्यक्त होता है। यदि किन्हीं विशेष प्रकार के मूल्य से प्रभावित होकर इतिहासकार तथ्यों का अध्ययन करता है तो ऐसा अध्ययन अन्य प्रकार के मूल्यों से प्रभावित होकर किये गये अध्ययन से भिन्न हो जाता है, जैसे कि यूरोप के इतिहास के बारे में भारतीय बौद्ध धर्म से प्रभावित कोई इतिहासकार इतिहास लेखन करता है तो उसका दृष्टिकोण यूरोप के पाठकों को अपरिचित लगेगा, जबकि बौद्ध अनुयायियों को वह मूल्याश्रित । इस स्थिति में पाठक इतिहासकार की मूल्य–धारणा से परिचित होकर ही अपना उद्देश्य पूर्ण कर सकता है । इसी क्रम में स्वीकृत संदर्भ के ज्ञान के अभाव में कोई भी इतिहासकार इतिहास के मूल्य और निर्णय के साथ न्याय नहीं कर सकता है; यदि वह सत्य–असत्य, अच्छा–बुरा, नैतिक–अनैतिक, आदर्श आदि का परिवेशगत अर्थ नहीं जानता तो उसका लेखन इतिहास संगत नहीं है।

किन्तु ऐतिहासिक मूल्य की अवधारणा के अन्तर्गत इतिहासकार मात्र वर्तमान परिवेश के आदर्श पर ही नहीं ठहर जाए इसलिए आवश्यक है कि अतीत के मूल्यों के संदर्भ में वर्तमान के तथ्यों का निरूपण करें। इससे जहां अतीत का मूल्य अतीत की आंखों से देखा जा सकेगा वहां वर्तमान के आदर्श से उसकी वैज्ञानिक व्याख्या संभव हो सकेगी।

21.10 वस्तुपरकता एवं तथ्य

इतिहास में सत्य का वर्णन करने की दृष्टि से आवश्यक है कि इतिहासकार में वस्तुपरक दृष्टिकोण विद्यमान हो । इसके लिये तथ्य ही आवश्यक क माध्यम है । अत: इतिहासकार की वस्तुपरकता तथ्यों की वस्तुपरकता कही जा सकती है । किन्तु तथ्यों की वस्तुपरकता ही सत्य है तो समान तथ्यों पर आधारित इतिहास के निष्कर्ष भिन्न–भिन्न अथवा परस्पर विरोधी नहीं दिखने चाहिये, क्योंकि समान तथ्यों की वस्तुपरकता समान ही होगी । इस प्रकार समान तथ्यों के होते ऐतिहासिक अध्ययन का वस्तुपरक नहीं होना बतलाता है कि तथ्यों की व्याख्या ही वस्तुनिष्ठ होती है । तथ्यों की व्याख्या करते समय इतिहासकार अतीत, वर्तमान और भविष्य के सम्बन्धों में वस्तुपरकता का ध्यान रखकर ही ऐतिहासिक अध्ययन को वस्तुनिष्ठ बनाता है । इस मायने में प्रो. कार का यह कथन उपयुक्त है कि "इतिहास की वस्तुपरकता तथ्यों की वस्तुपरकता नहीं है अपितु तथ्यों तथा उनकी व्याख्या के अन्नतर अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के संबंधों की वस्तुपरकता है ।"

21.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. तथ्य क्या है? इनका ऐतिहासिक तथ्य से अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
2. ऐतिहासिक तथ्य किस प्रकार बनते हैं?
3. विशिष्ट तथ्य एवं मूलभूत तथ्य की व्याख्या कीजिए ।
4. ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में कार्ल बेकर के विचार का वर्णन करिए ।
5. इतिहास की वस्तुपरकता मुख्य रूप से तथ्यों पर आधारित नहीं होती । क्या आप इससे सहमत हैं?
6. "तथ्य कभी नहीं बोलते" से आप क्या समझते हैं? व्याख्या के संदर्भ में इसका विवेचन कीजिए।
7. ऐतिहासिक तथ्यों के मूल्य काल–क्रम के अनुसार किस प्रकार परिवर्तन कर लेते हैं? सोदाहरण समझाइये ।

8. स्रोत कितने प्रकार के होते हैं तथा उनका तथ्य निर्माण में क्या महत्व है, लिखिये?

12.12 संदर्भ विचार

(1) "तथ्य मछुआरे की पटिया पर पड़ी मछलियों की तरह होते हैं"

(2) "व्याख्या, तथ्यों की गुठली के चारों ओर लिपटा विवादास्पद गूदा है"

(3) "तथ्य अनुभव के आकड़े होते हैं जो निष्कर्ष से मिल होते हैं"

(4) "तथ्यों का भाग्य विधाता इतिहासकार है" ।

(5) "व्याख्या इतिहास के जीवन का रक्त है" ।

27.13 संदर्भ ग्रंथ

(1) कार, ई. एच. – इतिहास क्या है? मेकमिलन, दिल्ली (1979 संस्करण)

(2) कॉलिंगवुड, आर. जी – द आइडिया ऑफ हिस्ट्री, आक्सफोर्ड (1978 संस्करण)

(3) वाल्श, डब्लू. एच. - इंटरोडक्शन टू फिलासफी ऑफ हिस्ट्री लन्दन (1967)

(4) राउज, ए.एल – द यूज ऑफ हिस्ट्री, पेलिकन बुक्स (1971)

(5) ड्रे – फिलासफी ऑफ हिस्टरी, प्रेंटिस हाल (1964)

(6) डेबिड डबल्यू. नोबल – हिस्टोरियन्स अगेन्सट हिस्टरी, मिनेसोटा प्रेस (1965)

(7) पाण्डे, जी.सी – इतिहास स्वरूप एवं सिद्धान्त, राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी (1973)

(8) पॉचाल एच.सी. – इतिहास का अर्थ एवं पद्धति, रिसर्च पब्लिकेशन दिल्ली ।

(9) शेक अली, बी. – हिस्टरी इट्स थ्योरी एण्ड मेथड, मेकमिलन, दिल्ली ।

इकाई – 22
इतिहास में वस्तुनिष्ठता

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 इतिहास में वस्तुपरकता की अभिधारणा
22.3 इतिहास में वस्तुनिष्ठता
22.3.1 वस्तुनिष्ठ तथ्यता
22.3.2 वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण
22.3.3 वस्तुपरक व्याख्या
22.4 मूल्य एवं उद्देश्य
22.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
22.6 संदर्भ विचार
22.7 संदर्भ ग्रंथ

22.0 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययनोपरात आप जान पायेंगे कि –

(i) इतिहास में वस्तुपरकता की अभिधारणा क्या है?

(ii) इतिहास में वस्तुनिष्ठता किस प्रकार संभव है?

(iii) वस्तुनिष्ठता का मूल्य एवं उद्देश्य क्या है?

22.1 प्रस्तावना

वस्तु या पदार्थ (object) का प्रत्यक्ष अनुभव या आभास करना ही वस्तुपरकता (Objectivity) है । इतिहास में वस्तुपरकता का विवेचन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि इतिहास का संबंध मानव की क्रियाओं अथवा प्रतिक्रियाओं से संबंधित है, जो अनुभवशील या आभासित तो हो सकती है, किन्तु प्रत्यक्ष नहीं । इस रूप में क्या इतिहास में वस्तुपरकता संभव है? इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व हमें उन मतों का अवलोकन करना होगा जहां से प्रत्यक्षीकरण और वस्तुपरकता का इतिहास में प्रयोग करने का प्रयास आरम्भ हुआ था ।

22.2 इतिहास में वस्तुपरकता की अभिधारणा:

सत्रहवीं शताब्दी में आधुनिक विज्ञान के उदय ने अनुभववादी विचारधारा में मिमांसित ज्ञान के तत्व अनुभव तथा आभार के स्थान पर साक्ष्य तथा प्रत्यक्ष अनुभव मात्र को ज्ञान के प्रमाणित आधार के रूप में प्रतिष्ठित किया । इतिहास में भी इसी के फलस्वरूप अनम्य और अपरिवर्तनीय तथ्यों का निरूपण करने हेतु समीक्षात्मक रीति–विज्ञान को विकसित किया गया । अट्ठारहवीं शताब्दी तक इतिहासकार इसी विचार धारा से प्रेरित होकर अपने लेखन कार्य में संलग्न रहे । इसके समानान्तर इतिहास के चिन्तनशील विद्वानों ने प्रकृति के ज्ञान तथा इतिहास के ज्ञान के मध्य स्पष्ट अन्तर बतलाते हुए इतिहास में तर्क द्वारा यथार्थ प्रस्तुत करने इतिहास की

घटनाओं में सामान्यीकरण करने के स्थान पर विशिष्टिकरण की खोज को ही इतिहासकार का लक्ष्य निश्चित किया । किन्तु शुद्ध विज्ञानवादी दार्शनिकों ने तर्क शैली द्वारा यह प्रश्न खड़ा कर दिया कि सामान्यीकरण को अस्वीकार करने पर तथा किसी बाह्य प्रतिमाह का व्यवहार असंभव मानने पर भी " किसी समय–विशेष में किसी विशेष मानव समाज ने एक विशेष प्रकार का विश्वास रखा और एक विशेष रूप में कार्य किया " जो कि बिना सामान्यीकरण के कैसे संभव है? हर्डर नामक जर्मन दार्शनिक ने मनुष्य अर्थात् इतिहासकार को मात्र तर्कशील ही नहीं माना अपितु उसे निश्चयशील एवं अनुभव करने वाला प्राणी भी बतलाया है । उसके अनुसार मनुष्य को इतिहास की सम्पूर्णता समझने के लिए तर्क की अपेक्षा कुछ और अधिक की आवश्यकता होती है । मानव अतीत को समझने के लिए हर्डर ने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए समझाया कि " इतिहासकार को अतीत के अन्दर जा कर उसकी वास्तविकता का अनुभव करना चाहिये " । अर्थात् तर्क तथा अनुभव का संतुलित पुनर्स्थापन ही अतीत का यथार्थ एवं विशिष्ट स्वरूप बनाता है । इस प्रकार हर्ड ने इतिहास लेखन या अनुसंधान के लिए इतिहासकार में अन्तर्दृष्टि के तत्व को प्रमुखता प्रदान की, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के क्रान्तिकालीन युग में इतिहास का उक्त स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण फीका पड़ने लगा तथा शनैः शनैः इतिहास को इतिवृत के स्थान पर सामाजिक विज्ञान के रूप में करने की अभिलाषा ने इतिहासविदों को वैज्ञानिक चिंतन की ओर अग्रसर किया।

वैज्ञानिक चिंतन का प्रथम इतिहासविद् लियोपोल्द रान्के (1795 – 1885 ई) था । रोमन और जर्मन जातियों का इतिहास नामक अपनी कृति की भूमिका में रान्के ने लिखा – " एस बिल ब्लोस त्साइगन बी एस आइगेन्तलिश गेवेजन इस्त " जिसका अभिप्रायः है कि " इतिहासकार का कर्तव्य है कि जैसा भी भूतकाल में हुआ है उसका वैसा ही वर्णन करें " । इससे इतिहास की भ्रान्तियों का निवारण आसानी से होता है । विश्व–इतिहास नामक इतिहास–ग्रंथ में रान्के ने कुछ मान्यताओं पर प्रकाश डाला, जिनके अनुसार इतिहास के नेता और अभिनेता दैवी शक्तियों के वाहन होते हैं । व्यक्ति और जातियां विश्व प्रगति के उपकरण हैं । दैवी शक्तियों का आभास विचारों द्वारा मिलता है । इन विचारों की अन्त प्रक्रिया में इतिहास का रहस्य छिपा हुआ है । इस प्रकार रान्के के व्यवहारवादी इतिहास–चिन्तन में मौलिक सामग्री के अन्वेषण तथा विश्लेषण के प्रति जागरूकता तथा तथ्य प्रतिपादन के लिये लिखित सामग्री का साक्ष्य अनिवार्य था । बेनेदेत्तों क्रोचे नामक इटालियन इतिहासकार ने रान्के के दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए भी यह स्वीकार किया है कि " रान्के की आलोचना में वैज्ञानिकता, उसकी शैली में कलात्मकता और चरित्र–चित्रण में सर्वांगीणता विद्यमान थी "। रान्के के पश्चात् मामसेन ने थी ऐतिहासिक स्त्रोतों की वैज्ञानिकता पर बल दिया । वहीं पीएर गुययाम गीजों (1787 – 1874 ई०) ने तथ्यों की खोज तथा उनका निरूपण इनके पारस्परिक संबंधों की गवेषणा एवं इनके रूप व गति को सजीवता प्रदान करना इतिहासकार का कर्तव्य बतलाते हुए तथ्यवादी इतिहास को सच्चा इतिहास माना । गीज़ों के शिष्य विक्टर घुरूई (1811 – 1894 ई०) के विचार में वैज्ञानिक इतिहास का अर्थ घटनाओं को कार्य –कारण श्रृंखला से स्पष्ट करना अर्थात् व्याख्यायित करना होता है, जबकि तथ्यवाद के प्रबल समर्थक लार्ड एक्टन (1834 – 1902 ई०) ने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के रेजीयस चेयर " के प्राध्यापक पद पर रहते हुए कैम्ब्रिज़ माडर्न हिस्ट्री की योजना में इतिहास के प्रत्यक्ष अनुभव के अन्तर्गत केवल तथ्य पर ही बल दिया था । शुद्ध विज्ञानवादी विचारधारा के

इतिवृतात्मक दिशा वाले इतिहासविदों के साथ–साथ समाज –विज्ञान धारा के प्रवृति मूलक दिशा में तथ्यों के संबंध और उनमें निहित नियमों की गवेषणा का लक्ष्य मानने वाले इतिहासकारों में आगस्त काम्ते ने सामाजिक भौतिक विज्ञान की अवधारणा में ऐतिहासिक तथ्यों के वस्तुनिष्ठ विवेचन द्वारा आन्तरिक नियमों की स्थापना को स्वीकार करते हुए बतलाया है कि इन नियमों द्वारा भावी गति–विधि का आभास हमें मिल सकता है । इस प्रकार बीसवीं शताब्दी तक वैज्ञानिक अवधारणा के अन्तर्गत वस्तुपरक इतिहास को सच्चा इतिहास माना जाने लगा । विज्ञान के सामान्यीकरण, क्रमबद्धता, प्रयोग तथा भविष्य वाणी की तरह इतिहास में घटनाओं के तथ्य, कार्यकारण, व्याख्या और विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत किये जाने की प्रवृति का प्रचलन हुआ ।

22.3 इतिहास में वस्तुनिष्ठता

यह तो स्पष्ट है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता इतिहासकार द्वारा निर्मित होती है । इसके लिये इतिहासकार में घटनाओं से प्रत्यक्षीकरण, घटनाओं का तथ्यीकरण, घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या और इनके परस्पर अन्त: सम्बन्धों से उपार्जित भविष्यवाणी या विश्लेषण करने वाला ज्ञान विद्यमान होना चाहिये । इस प्रकार के ज्ञान को आर० जी० कालिंगवुड ने ऐतिहासिक ज्ञान के रूप में उद्बोधित किया है । वर्तमान में अतीत का सत्यापन करना ही ऐतिहासिक ज्ञान है । यह सत्यापन इतिहासकार के मन द्वारा मन में वस्तुगत हो सकते हैं । अर्थात् यह अनुभूति से अनुभव की ओर ले जाने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो वर्तमान के प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा सम्पूर्ण अतीत को जानने का चिन्तन है । ऐसे साक्ष्य हमें तत्कालीन लिखित अलिखित स्रोतों और स्मृतियों द्वारा प्राप्त होते हैं । इस प्रकार साक्ष्य ही ऐतिहासिक तथ्य का निर्माण करते हैं । क्या इतिहास में तथ्य की वस्तुनिष्ठता स्रोत है?

22.3.1 वस्तुनिष्ठ तथ्यता:

इतिहास में वस्तुनिष्ठता के लिए आवश्यक है कि इतिहासकार के लेखन में वस्तुपरक दृष्टिकोण विद्यमान हो । ऐसा दृष्टिकोण डोनाल्ड वी० गोरोन्सी के मत में " व्यक्तिगत पक्षपात ओर पूर्वाग्रह से मुक्त हो " तो इतिहासकार के द्वारा चयन किये गए ऐतिहासिक तथ्यों की वस्तुपरकता स्वत: प्रकट हो जाएगी । किन्तु इतिहासकार एक व्यक्ति ही होता है और यह पूर्णत: सम्भव नहीं कि वह तथ्य–निर्धारण में निरपेक्ष रहते हुए इनका प्रयोग कर सके । यदि ऐसा हो सकता तो एक ही प्रकार के तथ्य भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते थे। 1857 ईस्वी की भारतीय प्रतिक्रिया की घटना एक तथ्य होते हुए भी कुछ इतिहासकारों की दृष्टि में विद्रोह तो कुछ की नजर में क्रान्ति थी । इसलिए एक्टन समर्थक तथ्यवादी विद्वानों को तथ्यों की वस्तु निष्ठता में व्याख्या की वस्तुपरकता को स्वीकार करना पड़ा था। ई० एच० कार तथ्य एवं व्याख्या के मध्य संबंधों की वस्तुपरकता को महत्व देता है । कार के अनुसार तथ्य कभी भी शुद्ध रूप में नहीं मिलते हैं, वे हमेशा इतिहासकार के मस्तिष्क से प्रभावित होकर इतिहास में आते है । प्रत्येक इतिहासविद् अपने मानसिक स्तर तथा अपनी कल्पनात्मक समझ के आधार पर तथ्यों का अंकन करता है। अत: तथ्यात्मक इतिहास की वस्तुपरकता इतिहासकार की तत्सम्बन्धी योग्यता से प्रभावित होती है, जो

एक जैसी नहीं हो सकती। पर सत्य अन्वेषी इतिहासकार संतुलित विवेक द्वारा वैयक्तिक आग्रह या पक्षपात से दूर रहने का प्रयत्न अवश्य करता है, जो उसकी वस्तुनिष्ठ दृष्टि को बनाने में प्रबल कारक है। कार के अनुसार विज्ञान भी पूर्णत: वस्तुनिष्ठ नहीं होकर प्रतिभासानिष्ठ होता है । अत: ज्ञान विभिन्न कल्पनाओं के अनुसार प्रतीतियां की योजना होता है, जो प्रमाण एवं साक्ष्य द्वारा विषय को प्रमाणित बनाता है या यथार्थपरक बनाता है । इतिहास में तथ्यों का चयन " ऐतिहासिक न्याय " प्रणाली द्वारा होता है, जिसमें इतिहासकार एक न्यायाधीश के रूप में इतिहास के साक्ष्यों का परीक्षात्मक एवं प्रमाणात्मक विधि से अपने निर्णयों को " ऐतिहासिक –ज्ञान " के माध्यम से अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष में देखते हुए तथ्यात्मक निर्णयों को प्रकट करता है । यह तथ्य सर्व था सत्य नहीं है किन्तु विश्वस्त सत्य है ।

तथ्यों की वस्तुनिष्ठता पर संशयग्रस्त होने का आरोप लगाया जाता है कि इतिहासकार वर्तमान में प्राप्त तथ्यों द्वारा अतीत को देखते हुए काल –चेतना (time sense) को गौण कर देता है । प्रत्येक युग की अपनी – अपनी ध्वनि होती है । यदि इतिहास वर्तमान की ध्वनि को अतीत में आरोपित करेगा तो वह इतिहास में वस्तु परक –लेखन से हट जाएगा । इतिहासविद् कार्लबेकर, ईसाइया बर्लिन, बुशमेकर, हेजलिट आदि ने वस्तुनिष्ठ तथ्यता की सम्भावना तक को अपने मत में अस्वीकार किया है । इनके अनुसार भाषा का प्रयोग, तथ्यों के चयन की प्रणाली, व्याख्या आदि इतिहासकार के देश, वातावरण, (जिसे वर्लिन ने अभिप्राय (Opinion) का वातावरण कहा है) रूचि, रूढ़ि, परम्परा, राजनीतिक स्थिति तथा व्यक्तिगत स्वभाव से अवश्य प्रभावित होगी । अत: इतिहास में तथ्य कभी भी वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते और इसलिये इतिहास में वस्तु निष्ठता संदिग्ध होती है । क्रोच के कथनों में इतिहास समसामयिक विचारों का इतिहास होता है जिसका अर्थ हुआ कि इतिहासकार वर्तमान की दृष्टि से व्यतीत का मूल्यांकन करता है । इस रूप में इसका संबंध वर्तमान की आवश्यकता से संबंधित हो जाता है और इतिहास विषयपरक दृष्टिकोण अपनाने लगता है । यदि वह इस पद्यति को नहीं अपनाता है तो उसके लिए हिटलर, गांधी, नीरो तथा अशोक में भेद करना कठिन हो जाऐगा ।

तथ्यात्मक वस्तुनिष्ठता विज्ञान के प्रयोगों की तरह वस्तुपरक नहीं हो सकती, क्योंकि मानव बुद्धि द्वारा उपार्जित होने के कारण इसमें दोष उत्पन्न होने स्वाभाविक हैं । किन्तु ऐसे दोष विज्ञान में भी विद्यमान होते हैं । यदि ऐसा नहीं हो तो विज्ञान क एक आविष्कार परिष्कृत आविष्कारों का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता था और विज्ञान जड़ ज्ञान के रूप में स्थिर हो जाता । अत: दोषों का परिष्कार करते हुए इतिहास की निरन्तरता को स्थापित रखना अथवा इतिहास की प्रगतिमूलक अभिधारणा को ध्यान में रखते हुए विवेक के प्रयोग द्वारा ऐतिहासिक वस्तुपरकता को स्पष्ट करना ही तथ्यों की वस्तुनिष्ठता है ।

22.3.2 वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण:

इतिहासकार की भूमिका वस्तुपरक इतिहास की मुख्य बाधा है । यदि कोई इतिहास " इतिहास की भावना " या दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है तो मूलत: वह स्वयं की भावना की प्रस्तुति कर रहा होता है । प्रसिद्ध इतिहास दार्शनिक आर० कॉलिंगवुड ने "दी आइडिया ऑफ हिस्ट्री " में लिखा है कि "सन्त आगस्तीन आदिकालीन ईसाइयत, टिलमाण्ट सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांसिसी, गीबन अठारहवीं सदी के अंग्रेज तथा मामसेन उन्नीसवें शतक की दृष्टि से इतिहास को देखते थे । इनमें से प्रत्येक का दृष्टिकोण उसके लिए एकमात्र सम्भव दृष्टिकोण था" । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने भी दृष्टिकोण की वस्तुपरकता पर संशय किया है, क्योंकि इतिहास मात्र तथ्यों का संकलन ही नहीं अपितु इसमें मानव–मस्तिष्क की महत्वपूर्ण भूमिका भी सम्मिलित होती है । इसी सन्दर्भ में एक्टन के उत्तराधिकारी सर जार्ज क्लार्क ने वस्तुपरक ऐतिहासिक–सत्य जैसी स्थिति से इन्कार करते हुए लिखा था कि "इतिहास का कोई अर्थ नहीं वरन् असंख्य अर्थ होते हैं और उनमें से कोई भी एक दूसरे से ज्यादा सही नहीं होता । " अर्थात् प्रत्येक दृष्टिकोण विषयनिष्ठ होता है ।

किन्तु इतिहास में वस्तुपरकता जैसी स्थिति नहीं होती तो क्या कारण है कि एक एतिहासकार की वस्तुनिष्ठता की प्रशंसा की जाती है या एक को दूसरे इतिहासज्ञ की तुलना में अधिक विश्वसनीय माना जाता है । शायद इसका कारण इतिहासकार द्वारा तथ्यों के महत्व के निर्धारण में सही या वस्तुनिष्ठ मानकों का प्रयोग करना है। ई० एच० कार ने वस्तुनिष्ठता के दो आशय बतलाये हैं । – (1) इतिहासकार में इतिहास और समाज में निर्धारित उसके अपने सीमित दायरे के दृष्टिकोण से ऊपर उठने की क्षमता है और (2) इतिहासकार में अपनी दृष्टि को भविष्य में इस प्रकार प्रक्षेपित करने की क्षमता है कि उसे अतीत के बारे में अन्य इतिहासकारों में कहीं गहरी और अपेक्षाकृत स्थायी अन्तदृष्टि प्राप्त हो सकी है । इस प्रकार जो इतिहास इन विशेषताओं से युक्त होता है वह अन्य की अपेक्षा अधिक वस्तुनिष्ठ होता है । पर कार्लबेकर ने लिखा है कि "इतिहास हमेशा इतिहास का पुर्नलेखन होता है" । इस प्रकार इतिहास की पुर्नरचना प्रत्येक इतिहासकार की आन्तरिक भावनाओं के अनुकूल हो जाती है । इसे हम औरंगजेब की धार्मिक नीति के बारे में लिखे गए सर यदुनाथ सरकार तथा डा० फारूकी के दो भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण के उदाहरण या अकबर के बारे में उसके समकालीन इतिहासकार अबुल फजल तथा अब्दुल कादिर बदायूनी के अलग– अलग दृष्टिकोण द्वारा देख सकते हैं । किन्तु यह दो दृष्टिकोण इतिहासकार के लिए विषयनिष्ठ होते हुए भी सत्य अन्वेषण के लिए वस्तुपरक हैं । एक ही प्रकार के साक्ष्य से कभी भी विवेकपूर्ण निर्णय प्राप्त नहीं हो सकता । अत: ऐसे निर्णय के लिए या इतिहास को वैज्ञानिक बनाने के लिए भिन्न–भिन्न दृष्टि कोण ही पूर्ण सत्य की ओर ले जाने का मार्ग है । यद्यपि दृष्टिकोण विषयपरक होता है, किन्तु इसके द्वारा

इतिहासकार की दृष्टि मात्र तथ्यनिष्ठ ही नहीं रहती, बल्कि वह सत्यनिष्ठ होने लगती हैं । इसीलिए ई० एच० कार के मत में इतिहास तभी अर्थ और वस्तुनिष्ठता प्राप्त कर सकता है जब वह अतीत ओर भविष्य के मध्य एक स्पष्ट संवाद स्थापित कर ले जो कि तथ्य और व्याख्या के घनिष्ठ संबंध से ही सम्भव है । इसमें विवेकपूर्ण दृष्टिकोण ही सम्बन्ध को संतुलित रखता है ।

22.3.3 वस्तुपरक व्याख्या:

व्याख्या इतिहास को जीवन प्रदान करने वाला रक्त है । बगैर रक्त के इतिहास मृत– इतिहास कहलायेगा । इतिहासविद् ई० एच० कार के अनुसार "मात्र तथ्यों के आधार पर अर्थहीन या महत्वहीन इतिहास लिखा जायगा । मात्र व्याख्या के सहारे प्रचार या ऐतिहासिक उपन्यास का निर्माण होगा, इतिहास का नहीं । " अत: तथ्यों के महत्व को प्रत्यक्ष करने वाला विचार ही व्याख्या है । प्रसिद्ध इतिहास शास्त्री ईसाइया बरलिन ने अपनी पुस्तक "हिस्टोरिकल इनवाइटेबीलीटी" में लिखा है कि "इतिहासकार के रूप में हमारा कार्य विवरण देना तथा व्याख्या करना है, निर्णय देना नहीं" । किन्तु तथ्यों के महत्व को व्याख्या द्वारा प्रतिपादित करते हुए सवाल उठता है कि इसकी उपयोगिता आज के सन्दर्भ में क्या है, अर्थात इसका मूल्य क्या है? बेनेदेत्तों क्रोचे ने " हिस्ट्री एज दी स्टोरी आफ लिबर्टी " नामक अपनी पुस्तक में बतलाया है कि प्रत्येक विशुद्ध इतिहास समसामयिक होता है । किसी भी अतीतकालिक घटना व्यापार का इतिहास केवल इसके विवरण के रूप में हमारे लिये कोई विशेष महत्व नहीं रखता, उदाहरणार्थ– पेलोपोनेशियन युद्ध, मैक्सिको की कला अथवा अरबी दर्शन का विवरण प्रदान करने वाले इतिहास में वर्तमान की क्या अभिरूचि हो सकती है? इस प्रकार वर्तमानकालिक जीवन में अभिरूचि ही किसी को अतीत का अन्वेषण करने की ओर प्रेरित कर सकती है । पर इन अभिरूचियों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण होती है, जो अतीत के अंशों की व्याख्याओं का भी निर्धारण करती है । यह भूमिका निर्धारण के अतिरिक्त घटनाओं के भविष्य पर प्रभाव की दृष्टि से नैतिक निर्णय जो कार के शब्दों में "मूल्य निर्धारण" है, का निर्वाह भी करती है । आर. जी. कॉलिंगवुड ने "सभी इतिहास विचार का इतिहास" नामक अभिधारणा द्वारा बतलाया है कि "इतिहास अतीत का पुर्नलेखन करते हुए इसकी समीक्षा करता है और इसके मूल्य के प्रति निर्णय बताता है तथा इसमें दिखलाई पड़ने वाली त्रुटियों का शोधन भी करता है । अत: वर्तमान में अतीत का सातत्य मूल्यांकन द्वारा सम्भव होता है, जबकि विवेक द्वारा व्याख्या की वस्तुनिष्ठता को प्रतिष्ठित किया जाता है । ई० एच० कार ने इसी सन्दर्भ में लिखा है कि "इतिहासकार का मुख्य कार्य विवरण देना नहीं बल्कि मूल्यांकन करना होता है क्योंकि वह मूल्यांकन न करे तो उसे कैसे पता चलेगा कि क्या लिखना है। "

घटना कैसे घटित हुई? घटना क्यों हुई? इसका समाज तथा व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ा? आदि प्रश्न कुछ अथवा कई कारण लिये हुए होते हैं । इतिहासकार सत्य को

प्राप्त करने हेतु इन कारणों का विश्लेषण करते हुए कारणों का सामान्यीकरण करता है । अर्थात् विशिष्ट कारणात्मक व्याख्या से सरल कारणात्मक व्याख्या को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न ही इतिहास का सत्य है । यही व्याख्या की क्रमबद्धता एवं सरलीकरण व्याख्या की वस्तुनिष्ठता या वैज्ञानिकता है । यद्यपि चार्ल्स किंग्सले, कार्ल रेमण्ड पोपर एवं ईसाइया बर्लिन इस वैज्ञानिकता के प्रति असहमत है, किन्तु अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की ऐतिहासिक–क्रमबद्धता बगैर आधुनिक अर्थात् वर्तमान के महत्व के विशिष्ट बन कर रह जाऐगी, जिसका प्रभाव या प्रयोग उद्देश्यहीन हो जाएगा । इस रूप में महत्व ही सरलीकृत एवं सामान्य हो जाएगा । उदाहरणार्थ – भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सही मूल्यांकन करने के लिए इतिहासकार तत्कालीन ब्रिटिश उपनिवेशवाद एवं भारतीय राष्ट्रीयवाद के मूल अन्तर्विरोधात्मक तथ्य को केन्द्र में रखते हुए इनकी व्याख्या के रूप में दोनों ही प्रवृतियों के विकास, इनमें निहित विभिन्न घटकों का द्वन्द्व – सम्बन्ध, इनकी पारस्परिक किया–प्रतिक्रिया आदि के साथ–साथ वह ब्रिटेन की भारत के प्रति नीति की तथा भारत की बढ़ती चेतना की, मुक्ति संग्राम में सक्रिय विभिन्न वर्गों की नीतियों को स्थानीय और परस्पर सन्दर्भों में ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय विकास कम के बीच भी रख कर मूल्यांकन करेगा । इतिहासकार राष्ट्रीय आन्दोलन को एक समरूप और रेखीय विकास की तरह नहीं, अपितु विभिन्न तत्वों के कभी निकट आते या कभी परस्पर विरोधी होते हित–पूर्ति के प्रयत्नों एवं उन पर एक साथ और अलग–अलग प्रभाव डालते बाह्य–हितों की भूमिका के बीच मुक्ति की आकांक्षा के बढ़ते आधार के रूप में प्रस्तुत करेगा । इस प्रकार वह इतिहास की व्याख्यात्मक वस्तुनिष्ठता सन् सैंतालिस में प्राप्त स्वतन्त्रता के जीत–हार और परिणतियों के प्रारम्भ के रूप में नहीं देखेगा । इससे यह स्पष्ट होता है कि इतिहासकार को क्रमबद्धता, सरलीकरण एवं कारण की बहुविधता के मध्य कार्य करना पड़ता है, जो कि बाह्य एवं आन्तरिक रूप में परस्पर विवाद, वाद एवं संवाद की निरन्तर गतिशील इतिहास के विकास की प्रक्रिया है । किन्तु इसमें सत्य का उद्घाटना परिकृत रूप में अनुभूत होता है । कार ने भी व्याख्या के वस्तुपरक स्वरूप के बारे में लिखा है कि "चूंकि भिन्न–भिन्न कोणों से एक पहाड़ की शक्ल भिन्न–भिन्न दिखलाई देती है । इसलिए इसका कोई वास्तविक रूप नहीं है या इसके अनन्त रूप हैं । इसी प्रकार इतिहास के तथ्यों को स्थापित करने के लिए व्याख्या चूंकि एक आवश्यक भूमिका अदा करती है । और चूंकि कोई भी वर्तमान व्याख्या पूर्णतया वस्तुपरक नहीं है, एक व्याख्या दूसरी जैसी है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि सिद्धांत रूप में ऐतिहासिक तथ्यों की वस्तुपरक व्याख्या असम्भव है । जैन–दर्शन में स्यादवाद वस्तुपरक दृष्टि का मौलिक चिन्तन है, जो कि इतिहास में प्रयुक्त किये जाने पर व्याख्या की वस्तुपरकता को सार्थक सिद्ध करता है– । प्रसिद्ध अमेरिकन दार्शनिक आर्थर ओ० लवज्वाय ने भी घटना के कार्य–कारण को समझने के लिए बहुपक्षवाद (प्लूरालिज्म) सिद्धांत के अन्तर्गत व्याख्या और निर्णय को इतिहास में वस्तुपरकता का

एक मानदण्ड स्वीकार किया है । इस प्रकार सम्यक् – व्याख्या ही वस्तुपरक व्याख्या का प्रतिदर्श कहा जा सकता है ।

22.4 मूल्य एवं उद्देश्य:

आधुनिक सन्दर्भ में अतीत का अवलोकन किस प्रयोजन से किया जाता है? अथवा आज की दृष्टि में कल की प्रासंगिकता का क्या औचित्य है? आदि प्रश्न इतिहास के उद्देश्य और मूल्य द्वारा स्पष्ट किये जा सकते हैं । ईसाइया बरलिन के अनुसार इतिहास का अध्ययन–विषय ही मूल्य–संपृक्त है । लीओ स्ट्रास लिखता है कि "इतिहासकार किसी वस्तु के विषय में इसके स्वरूप को जाने बिना नहीं लिखा सकता तथा बिना मूल्यारोपण किए वह अध्ययन के एतद्रूप विषयों को कैसे जान सकता है? अत : इतिहासकार के विचार मूल्यपरक होते हैं, जो कि इतिहासकार की वर्तमान संस्कृति से निर्धारित होते हैं " । इसीलिए एम० मेडलबाम के अनुसार इतिहासकार की व्याख्या पर परिवर्तित मूल्यों का प्रभाव रहता है, जिससे वह वर्तमान की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए अतीत के उद्देश्य के प्रति न्याय नहीं करता है । उदाहरण के तौर पर जौहर, दास प्रथा, सती–प्रथा आदि का उस युग में महत्व इतिहासकार के द्वारा आज के संदर्भ में राजनीतिक या सामाजिक आर्थिक मूल्यों की दृष्टि से उद्देश्यहीन हो जाएगा । अत: इतिहास का लक्ष्य अतीत के यथार्थ से आधुनिक मूल्य पर आर्दशवादी होने के फलस्वरूप विषयनिष्ठ होगा, जबकि होना यह चाहिए कि उस युग का मूल्यांकन उस युग के मापक से ही हो तथा आधुनिक व्याख्या के मूल्यांकन का उस युग के मूल्यांकन से तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा उद्देश्य का चयन हो । इतिहासकार अथवा कोई थी मूल्यांकनकर्ता यह नहीं कह सकता कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है? सत्य एवं असत्य में भेद भी वह तब तक व्यक्त नहीं कर सकता, जब तक कि उसके पास इसका कोई पैमाना नहीं हो । इस माप का अथवा मूल्यांकन का पैमाना क्या है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि वस्तु का जैसा स्वरूप रहा है तथा आज की आवश्यकता के अनुरूप उसे दोनों ही रूपों में सम्मुख रखते हुए अपने विचारों को अलग से व्यक्त करना ही मूल्यांकन की वस्तुनिष्ठ–पद्धति है, जिसके द्वारा सार्थक उद्देश्य एवं मूल्य का भविष्य हेतु उपयोग किया जा सकता है । क्रिस्टोफर बलेक ने इतिहास में वस्तुनिष्ठता पर विचार करते हुए दो प्रश्न खड़े किये – (1) इतिहासकार से किस प्रकार की वस्तुपरकता की अपेक्षा की जा सकती है? तथा (2) इतने इतिहासकारों या इतिहास दार्शनिकों को वस्तुपरकता के विषय में समस्या क्यों दिखलाई देती है? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए ब्लेक ने सुझाव दिए कि ऐतिहासिक व्यवहार के अनुसार इतिहासकार प्राप्त अभिलेखों में उपलब्ध समग्र सूचना में से कुछ चयन करने के लिए बाध्य होता है । यह निर्वचन व्यक्तिगत कारक से प्रभावित रहता है फिर भी इतिहासकार यही दावा करता है कि उसके निष्कर्ष तथ्यगत और अध्ययन वस्तुपरक है । प्रो० बटरफील्ड ने सामान्य इतिहास एवं ऐतिहासिक शोध के मध्य अन्तर बतलाते हुए स्पष्ट किया है कि सामान्य इतिहास में ऐतिहासिक संगठन और अनुमान की कुछ प्रविधियां प्रयुक्त होती हैं ताकि इस दार्शनिक चुनौती का सामना किया जा सके कि शोधकर्ता किस प्रकार वस्तुपरक चयन कर सकता है । इसके अनुसार क्लार्क एवं ऑकशाट ने अपने मत से तथ्य के स्थान पर व्याख्या द्वारा इतिहास का प्रारम्भ माना है, जिसे इतिहास में पुनर्व्याख्यायित् किया जाता है । इस दृष्टि से अधिकांश विद्वान लिखित इतिहास की वस्तुपरकता से असहमत होते हुए उसे विद्यमान युग से मानसिक परिवेश तथा इतिहास लेखक के व्यक्तिगत पक्षपात का प्रतिफल मानते हैं । किन्तु इनके मत के विपरीत कहा

जा सकता है कि इतिहास की अनेक बातों के विषय में हमें आम सहमति प्राप्त होती हैं । अत: मात्र व्यक्तिगत पक्षपात का दर्शनारोप तर्क के आधार पर निर्मूल हो जाता है, क्योंकि एक ओर तो वह मानते हैं कि इतिहास में वस्तु परकता नहीं होती त था दूसरी ओर इतिहास की सामान्य विषयवस्तु पर वह सहमत हो जाते हैं । इसका महज उत्तर यही है कि दार्शनिकों की न जर में जिस प्रकार की वस्तुनिष्ठता इतिहास में होनी चाहिये, वह किसी भी प्रकार दिखाई नहीं दे सकती । इतिहास जड़ –जगत का आकलन नहीं है, अपितु चेतन–जगत में मानव प्रक्रियाओं का अवलोकन है । अत: मानव स्वभाव मानसिक परिवेश से पूर्णत: मुक्त इतिहास कभी लिखा ही नहीं जा सकता । इतिहास एक गतिशील विषय है, जिसमें बार – बार अनुसंधान द्वारा ऐतिहासिक अवधारणाओं में परिवर्तन होता रहता है । इसी कारण इतिहास में अवैयक्तिक और मौलिक विचार जड़ नहीं हो सकते, अपितु चेतना के विकास के साथ –साथ दृष्टिकोण द्वारा अभिव्यक्त होते रहते हैं ।

वस्तुपकरता की समस्या के बारे में विचार करते हुए ब्लैक ने सुझाया कि वस्तुपरकता का मतलब प्रसंग के अनुसार अलग – अलग होता है । इसे मात्र विषयपरक के विलोम अर्थ में प्रयोग करने से इसकी व्यापकता सीमित हो जाती है । जैसे एक पत्रकार की सही रिपोर्टिंग, उसका तटस्थाभाव तथा उसकी अभिव्यक्ति की तर्कशील प्राणियों द्वारा स्वीकृति ही वस्तुनिष्ठ पत्रकारिता है । इतिहास में भी वस्तु परकता का आशय उद्देश्य की सार्थकता है, जिसमें लेखक विवेकाधारित निष्पक्षता, इतिहासकारों के समाज में लेखन की प्रतिष्ठा, समीक्षक की नजर में पूर्ण तर्कयुक्त त था शिक्षक के अध्यापन में प्रासंगिक इतिहास वस्तुनिष्ठता के निकट होता है । विज्ञान में वस्तुनिष्ठता मूल्यनिरपेक्ष होती है, वहीं इतिहास में वस्तु परकता सत्यनिष्ठ एवं मूल्य युक्त होती है।

डा० गोविन्द चंद्र पाण्डे ने इतिहास तथा प्राकृतिक विज्ञानों की वस्तुनिष्ठता का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि " इतिहास में विज्ञान की विशिष्ट प्रयोगात्मक सत्यापन की विधि को कोई स्थान नहीं है । इतिहासकार का उद्देश्य इतिहास लिखना होता है न कि इतिहास बनाना । फिर इतिहास में गणित सिद्ध तर्क –प्रक्रिया का भी कोई स्थान नहीं है । इतिहास वर्णनात्मक विद्या है न कि निगमनात्मक या प्रयोगात्मक । वैज्ञानिक के समान तटसा होकर अध्ययन की प्रवृति के बारे में पाण्डे ने उद्धृत किया है कि तटस्थता का अर्थ पक्षपात शून्यता और सत्य में आग्रह है, वहाँ तक तो ठीक है, क्योंकि इतिहासकार की दृष्टि न सिर्फ तथ्यनिष्ठ होती है, बल्कि सत्यनिष्ठ भी होती है । वह वस्तु के साथ मूल्य का अनुभव करता है, तर्क के साथ विवेक का उपयोग करता है और विवेक का यह प्रयोग इतिहास में इतिहासकार की बौद्धिकता को वैज्ञानिक से अधिक जागरूक कर देता है । इतिहासज्ञ तथा वैज्ञानिक दोनों ही यथार्थग्राही होते है । अत : ज्ञान को समझने की प्रक्रिया में दोनों ही यथार्थग्राही होते हैं । अत: ज्ञान को समझने की प्रक्रिया में दोनों ही निर्णय के लिए प्रमाणाश्रयी होते हैं । पर प्रमाण–प्रयोग में जहां वैज्ञानिक सामान्यीकरण एवं नियम की ओर उत्सुक होता है वहां इतिहासकार प्रमाणाश्रित परीक्षा द्वारा आलोचना के सन्दर्भ में संभावनात्मक अनुमान करता है, जो कि शुद्ध पद्धति है ।

इतिहास व प्रकृति विज्ञानों की वस्तुपरकता प्रमाणाश्रित होने के फलस्वरूप समान होते हुए भी इतिहासकार भी निर्णय–बुद्धि के कारण भिन्न हो जाती है। इसीलिए कार ने इतिहास की वस्तुनिष्ठता को तथ्यों की वस्तुनिष्ठता न मानकर उसे सम्बन्धों की वस्तुनिष्ठता बतलाया है ।

यह सम्बन्ध डॉ. पाण्डे के मत में अनुभवमूलक सम्भावना और अन्तर्दृष्टिवत् परख या विवेक बुद्धि के द्वारा निर्णयन है । कार ने इतिहास में विषय (subject) और वस्तु (object) को इतिहासकार अर्थात् दृष्टा (observer) से भिन्न नहीं माना है । वह लिखता है कि " इतिहास का एक आवश्यक दायित्व है – अतीत की विकासात्मक व्याख्या । यह प्रचलित अवधारणा कि परिवर्तन की व्याख्या किसी स्थिर और अपरिवर्तनीय मानदण्डों के आधार पर हो सकती है, इतिहासकार के अनुभव के विपरीत है । केवल भविष्य ही अतीत की व्याख्या के यन्त्र दे सकता है और केवल इसी अर्थ में हम इतिहास में पूर्ण वस्तुनिष्ठता की बात कर सकते हैं । अतीत भविष्य पर प्रकाश डालता है और भविष्य अतीत पर, यह तथ्य एक साथ इतिहास की व्याख्या भी है और इतिहास का औचित्य भी निर्धारित करता है ।

जी.एम.टेवेल्यान ने इतिहास में वस्तुपरकता और विषयपरकता का संतुलित औचित्य बतलाते हुए लिखा कि "इतिहासकार को तथ्य संग्रहण में वैज्ञानिक, उनके वर्गीकरण में वैचारिक तथा प्रस्तुतीकरण में साहित्यिक दृष्टिकोण अपना चाहिये, तभी वह भविष्य में नई मानसिकता एवं अतीत के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर सकता है । इसके बिना इतिहास का कोई मूल्य नहीं है । अत : इतिहास का महत्व उसकी शैक्षिक महत्ता में है । " ट्रेवेल्यान की इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता और विषयपरकता दोनों की गुण विद्यमान होने चाहिये । प्रो० बी० शैक अली के अनुसार " पूर्ण वस्तुनिष्ठता अलभ्य है जबकि विषयपरकता का कुछ अनुपात अनिवार्य न होकर वांछित है । किन्तु इनकी मात्रा खाने में नमक के समान होनी चाहिये, अन्यथा किसी की भी अधिकता शोरबे का स्वाद नष्ट कर देगी । " प्रो. एन. सुब्रहमनीयन ने अपनी पुस्तक " हिस्टोग्राफी" में फराडे के विचार को संयोजित करते हुए बतलाया है कि " वैज्ञानिक कुछ नहीं ग्रहण करता, किन्तु सब कुछ अवलोकन करता है । किन्तु इतिहासकार मात्र अवलोकन ही नहीं करता, अपितु मन्तव्य भी देता है । अत: वह विषयपरकता से अछूता नहीं होता' । अत: इतिहास में वस्तुनिष्ठता तथ्य, व्याख्या, दृष्टिकोण, मूल्य तथा उद्देश्य का विवेकपूर्ण सामंजस्य का स्वरूप है, जिसके लिए इतिहासकार न्यायाधीश की तरह अपने मन्तव्य भले ही प्रकट करें न कि एक वकील की तरह अपना पक्ष प्रस्तुत करने में इतिहास को विवादपूर्ण या वस्तुपरक दृष्टि से वंचित कर मात्र विवेचना का साधन बना दे, जिसमें विश्लेषण सौन्दर्य परक अनुमति लिए साहित्य की विद्या या ज्ञान को प्रतिष्ठित करें ।

22.5 अभ्यासार्थ प्रश्न:

(1) इतिहास में वस्तुपरक की अभिधारणा का आरम्भ किस प्रकार हुआ? समझाइये ।

(2) तथ्य की वस्तुनिष्ठता से क्या आशय है? इतिहास में इसका महत्व बतलाइये ।

(3) इतिहास में विश्वसनीयता का मापदण्ड क्या हो सकता है?

(4) " इतिहास का मुख्य कार्य विवरण देना नहीं, बल्कि मूल्यांकन करना होता है " – कार के इस क धन से वस्तु परकता का क्या अभिप्राय है?

(5) जैन –दर्शन का स्यादवाद वस्तुपरक दृष्टिकोण का अच्छा उदाहरण है, क्यों? लिखिये ।

(6) वस्तुपरकता की समस्या पर क्रिस्टोफर ब्लैक के विचार लिखिये ।

(7) "इतिहास में सत्य प्रस्तुत करने के लिए विषयपरकता की आवश्यकता भी होती है " इस विचार से आप कहां तक सहमत हैं ।

(8) "इतिहासकार का उद्देश्य इतिहास लिखना होता है न कि इतिहास बनाना । " स्पष्ट करिये ।

22.6 संदर्भ - विचार:

(1) "वस्तु परकता का अर्थ बिना व्यक्तिगत, पक्षपात या पूर्वाग्रह के ऐतिहासिक तथ्यों क प्रयोग करना है ।

(2) "इतिहास की व्याख्या हमेशा वर्तमान द्वारा होती है ।

(3) "इतिहास इतिहासकार का अनुभव है " ।

(4) "इतिहासकार की दृष्टि न सिर्फ तथ्यनिष्ठ होती है, अपितु सत्यनिष्ठ भी होती है "

(5) "इतिहास का एक आवश्यक दायित्व है, अतीत की विकासात्मक व्याख्या ।

(6) "इतिहासकार को मानवीय कर्मों के सदसत का निर्णय भी करना चाहिये । "

22.7 सन्दर्भ ग्रंथ

(1) कार, ई. एच. – इतिहास क्या है? मैकेमिलन, दिल्ली, । 1979

(2) कालिंगवुड, आर. जी. – द आइडिया आफ हिस्ट्री, आक्सफोर्ड 1978

(3) वात्या, डब्लू. एच. – इंटरोडक्शन टू फिलासफी आफ हिस्ट्री, लन्दन, 1967

(4) राउन, ए.एल. – द यूज आफ हिस्ट्री, पैलीकन बुक्स, 1971.

(5) सुब्रमनीयन, एन. हिस्टोग्राफी, कुदाल पब्लीशर्स, तमिलनाडू सन् 1978.

(6) वर्मा, लाल बहादुर – इतिहास के बारे में, दिल्ली 1984

(7) शैक अली, बी. – हिस्ट्री इट्स थ्योरी एण्ड मैथड, मैकमिलन, दिल्ली ।

(8) पाण्डे, जी.सी. – इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, जयपुर, 1973

(9) पांचाल, एच.सी. – इतिहास के सिद्धांत एवं पद्धतियां, जयपुर, 1989.

इकाई 23
इतिहास में कारण की अवधारणा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 कारण और व्याख्या
23.3 कारण और इतिहासकार
23.4 कारण तथा परिस्थितियाँ
23.5 वास्तविक तथा आधार भूत कारण
23.6 मूल्य सम्पृक्त व्याख्या
23.7 व्यक्तिगत दृष्टिकोण
23.8 निहित भविष्य
23.9 इतिहास में संयोग
23.9.1 इतिहास में संयोग – आलोचना
23.10 इतिहास में नियतिवाद
23.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
23.12 संदर्भ ग्रंथ

23.0 उद्देश्य:

(i) इतिहास में घटनाओं: के कारणों की व्याख्या करना ।
(ii) कारणों के विभिन्न प्रकार व रूपों को समझना ।
(iii) व्यक्तिगत दृष्टिकोण एवं कारण के बीच संबंध को इंगित करना ।
(iv) इतिहास में संयोग व नियतिवाद का विश्लेषण करना ।

23.1 प्रस्तावना

प्रत्येक घटित होने वाली घटना का कारण या अनेक कारण होते हैं । एक समय था जब लोग इन घटित होने वाली घटनाओं के कारणों की तह में जाना ईश्वरीय योजनाओं में हस्तक्षेप मानते थे । परन्तु आज यह माना जाता है कि इन कारणों का पता लगाया जा सकता है और ये भविष्य की योजनाओं हेतु उपयोगी हो सकते हैं । किन्तु, प्राय: ये कारण इतने विविध और जटिल होते हैं कि इनकी व्याख्या या विश्लेषण करना कठिन हो जाता है ।

लेकिन यह सत्य है कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है । कारण के विषय में अंग्रेज विद्वान माइकेल जे. ओकशॉट की मान्यता थी कि कारण इतिहास के शब्दकोष का अंग नहीं हैं । यह तर्क संगत प्रतीत नहीं होता इसके विपरीत प्रो. आर. जी. कलिंगबुड की मान्यता थी कि कारण वह प्रमुख तत्व हैं जो मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं विवश करता है। अत: इतिहासकार के लिये आवश्यक हे कि वह मनुष्य को कार्य करने को विवश करने वाले तत्वों का अध्ययन कारण के रूप में करें । वह अतीत के विभिन्न तथ्यों के मध्य संबंध स्थापित करें । इन्हीं तथ्यों के आधार पर प्रो. ई. एच. कार की मान्यता है कि इतिहास का अध्ययन कारणों का अध्ययन है । वर्तमान का निर्माण अतीत की पीठिका पर होता है अर्थात्

वर्तमान अतीत का परिणाम है और अतीत वर्तमान का कारण । कारणों के अभाव में परिणाम को खोजना इतिहास के उद्देश्यों की उपेक्षा करना है । प्रो. हाल्फोन का कहना है कि अनेक सरकारी अभिलेख जैसे – बिक्री, दान, विनिमय, न्यायालय में न्याय, प्रशासनिक अध्यादेश आदि सभी के पीछे कुछ कारण निहित थे । तथ्यों के संग्रह, परीक्षण और व्याख्या करते समय इतिहास इनमें अन्तर्निहित कारणों को खोजने के लिये प्रयत्नशील और सजग रहता है । अर्थात् कारण कार्य– सिद्धांत में यह बात निहित रहती है कि प्रत्येक कार्य का कोई कारण होता है और प्रत्येक कारण कार्य रूप में प्रतिफलित होता है । कारण वह है जो कार्य को उत्पन्न करे । मानवीय अनुभव की श्रृंखला परस्पर गुथी हुई है क्योंकि एक कार्य अन्य कार्यों के लिये कारण बन जाता है ।

इतिहास में कारण की अवधारणा का आरम्भ अरस्तु द्वारा किया गया । उसने प्रतिपादित किया कि कारण के अभाव में किसी घटना अथवा कार्य का होना असम्भव है । इतिहास के जनक हेरोडोल्स ने अपनी कृति के आरम्भ में अपने इतिहास लेखन के उद्देश्य को परिभाषित करते हुए लिखा था कि ग्रीक जाति बर्बर जातियों के कारनामों को सुरक्षित रखने के लिये और इन सभी चीजों के अतिरिक्त विशेष तौर से उनके पारस्परिक मुद्दों को बताने के लिये ही इतिहास की रचना की । लेकिन दूसरा यूनानी इतिहासकार थ्युसीडाइडीज कारण की अवधारणा से पूर्णतया अपरिचित था । इस प्रकार का आरोप उस पर लगाया गया है । लेकिन कारण की अवधारणा का सही अर्थों में आरम्भ 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ जब आधुनिक इतिहास लेखन की नींव पड़ी । फ्रांसिसी विद्वान मान्टेरक्यू ने अपनी कृति के आरम्भ में स्वीकार किया कि प्रत्येक राजवंश के उत्थान, राजस्वकाल और पतन के पार्श्व में कुछ नैतिक था भौतिक अर्थात् सामान्य कारण होते हैं और जो कुछ घटित होता है इन्हीं कारणों के अन्तर्गत होता है । अपनी इस अवधारणा को उसने अपनी पुस्तक "एस्परी दे लुआ" में विकसित किया और इसे सामान्य सिद्धांत का रूप दिया इसके बाद दो शताब्दियों तक इतिहासकार एवं इतिहास दार्शनिक प्रयास करते रहे कि मानव जाति के विगत अनुभवों को क्रमबद्ध करके ऐतिहासिक घटनाओं के कारणों का पता लगाया जाए और उनको निर्देशित करने वाले नियमों का आविष्कार किया जाए । इन कारणों और नियमों को कभी मशीनी' तो कभी जैविक, कभी अधोभौतिक कभी आर्थिक तो कभी मनोवैज्ञानिक शब्दावली में सोचा गया । किन्तु यह सर्वमान्य सिद्धान्त था कि अतीत की घटनाओं को क्रमबद्धता देकर कारण और प्रभाव के क्रम में रखना ही इतिहास है । कारण सिद्धान्त का प्रमुख उद्देश्य किसी तर्क युक्त योजना के कारण और परिणाम सम्बन्धों को क्रम बद्ध तरीके से प्रस्तुत करना है । कलिंग युद्ध के अनुसार इतिहास अतीत के मानवीय कार्यों का अध्ययन है । मानवीय कार्य अथवा घटना के कारणों को जानने का उद्देश्य किसी तर्क युक्त योजना का ज्ञान प्राप्त करना है ।

यह सर्वविदित है कि इतिहास में कारण एक घटना या क्रिया होती है । लेकिन इतिहास में वैज्ञानिक अवधारणाओं के समान कारणों में एक मत नहीं होता और न ही किसी भी कार्य के लिए एक कारण निर्धारित किया जाता है । इतिहास में कारणों में मतैक्य न होने के कारण अनेक समस्याएं सामने आ जाती हैं । वाल्श के अनुसार - कारणों की व्याख्या में इतिहासकारों में मतैक्य न होने से इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप पर जबरदस्त आघात पहुँचा है । जर्मन सम्राट विलियम क़ैसर का व्यक्तित्व– उग्रराष्ट्रवाद का उदय, शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा इत्यादि प्रथम विश्व युद्ध के कारणों के रूप में सामने आते हैं । यहीं आकर

इतिहासकारों के विचारों में मत बदल जाते हैं और प्रश्न उत्पन्न होता है किस तथ्य को प्रथम विश्व युद्ध का मूल कारण स्वीकार किया जाए? कारण एक्य की समस्या इसलिए थी सामने आती है कि इतिहासकारों की कारण व्याख्या पर उनकी राष्ट्रीयता जाति धर्म एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण आदि का प्रभाव पड़ता है, साथ ही यह भी सत्य है कि प्रत्येक कारण किसी विशेष परिस्थितियों की ही उपज होता है । उपर्युक्त तथ्य का समर्थन कॉलिन वुड करते हैं । उनके शब्दों में – "इतिहासकार परिस्थितियों से उत्पन्न कारणों की व्याख्या में अपने सिद्धान्त तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित होता है । " कॉलिंग वुड के इन विचारों को पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता है कि प्रत्येक घटना मनुष्य की प्रक्रिया का परिणाम है क्योंकि कुछ घटनाएँ ऐसी भी होती हैं जिसमें मानवीय प्रक्रिया के स्थान पर प्राकृतिक कारण प्रधान होते हैं । उदाहरणार्थ – भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, हिमपात आदि प्राकृतिक प्रकोप मानवीय इच्छा के प्रतिकूल परिणाम देते हैं। इसी प्रकार नेपोलियन बोनापार्ट के रूसी आक्रमण की विफलता का कारण हिमपात था । मुहम्मद तुगलक द्वारा अरब में कर वृद्धि की योजना भी अकाल व अनावृष्टि के परिणामस्वरूप असफल हुई । अत: इतिहासकारों को अपने ऐतिहासिक शोध में किसी भी घटना को प्रभावित करने वाले संभावित सभी कारणों की व्याख्या करनी चाहिए ।

कोई भी ऐतिहासिक घटना केवल एक कारण का परिणाम कदापि नहीं होती वरन् उसके लिए एक से अधिक कारण उत्तरदायी होते हैं । रेनियर के अनुसार इतिहास में कोई घटना एक नहीं अपितु अनेकानेक कारणों का प्रतिफल होती है । इस विषय में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल का कथन सर्वाधिक सार्थक सिद्ध होता है कि बिना अन्य कारणों पर ध्यान दिए किसी एक कारण के प्रभाव पर केन्द्रित होने से लोगों को सावधान करने के लिए हर संभव उपाय करने चाहिए क्योंकि प्रभाव में अन्य कारणों का भी हाथ होता है जो मुख्य कारणों के साथ मिले होते हैं । उदाहरणार्थ – हम भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्य पर दृष्टिपात करें हमें कुछ महत्वपूर्ण तथा कुछ कम महत्वपूर्ण अनेक कारण मिल जाएंगे । इस सच्चम्हा में ई. एच. कार ने अपना मत इस प्रकार किया है – " जब घटनाओं का कारण प्रदान करने की स्थिति समक्ष होती है तब इतिहास एक ही ऐतिहासिक घटना के कई कारण सामने रखता है । " जैसे वोल्शैविक क्रान्ति पर विचार करते समय इतिहासकार रूस की लगातार सैनिक पराजयों –अस्वस्थ आर्थिक स्थिति, वोल्शैविकों के प्रभावी प्रचार, जार, शासन की विफलता, गरीब व शोषित मजदूरों का समूहीकरण जैसे आर्थिक, राजनैतिक, सैद्धान्तिक और व्यक्तिगत कारणों को प्रस्तुत करेगा। ई. एच. कार. एक सच्चा इतिहासकार उसी को मानता हे जो इन कारणों को क्रमबद्ध ओर व्यवस्थित करते हुए उनके महत्वानुसार श्रेणीबद्ध भी करे । मात्र किसी घटना के विभिन्न कारणों को प्रस्तुत करना ही ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता । बल्कि तदुपरान्त इतिहासकार यह जानने का प्रयास करे कि उक्त घटना के उल्लेखित कारणों में सर्वाधिक प्रमुख व निकटतम कारण कौन सा है । साथ ही कारणों को क्रमश: करते समय प्रमुख कारण व सहायक कारणों की व्याख्या करता हो । जिन कारणों को एक इतिहासकार मान्यता देता है उन्हीं से वह जाना जाता है । इतिहास का प्रत्येक तर्क कारणों की प्राथमिकता से सम्बन्ध रखता है। ज्ञान के विकास के साथ–साथ ऐतिहासिक घटनाओं के कारण विविधता और जटिलता से मुक्त हो गए हैं । आज गिबन और उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रिटिश इतिहासकार पुराने प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने आर्थिक कारणों की उपेक्षा की थी । इसके विपरीत अध्ययन इतिहासकार इस पर सर्वप्रथम स्थान देते हैं । वैसे गिबन

ने रोमन साम्राज्य के हास और पतन का कारण बर्बरता और धर्म की विजय बताया था । इसी प्रकार उन्नीसवीं सदी के हिंग इतिहासकारों ने ब्रिटिश शक्ति के उत्कर्ष का श्रेय उन संस्थाओं के विकास को दिया जो संवैधानिक स्वतंत्रता पर आधारित थी । सारांश के तौर पर यह उचित प्रतीत होता है कि इतिहास से सम्बन्धित प्रत्येक तर्क उनके कारणों की प्राथमिकता के प्रश्न के इर्द – गिर्द घूमता रहता है ।

23.2 कारण और व्याख्या

यह नि:सन्देह सत्य है कि किसी भी घटना के पार्श्व में एक से अधिक कारण निहित होते हैं । यह इतिहासकार के स्वविवेक पर निर्भर करता है कि वह (रन कारणों की क्रमबद्धता में किस कारण को मुख्य व शेष अन्य को गौण या सहायक रूप से महत्व दे । प्रत्येक इतिहासकार का अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण होता है और उसी के अनुरूप वह कारणों को महत्व भी प्रदान करता है । प्रत्येक इतिहासकार किसी सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के सान्निध्य में रहकर ही इतिहास की रचना करता है । जीवन और परिवेश की उसकी समझदारी होती है । यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक इतिहासकार की अपनी एक अस्मिता होती है । जो निश्चित तौर पर उसके लेखन पर भी प्रभाव डालती है । उसका व्यक्तित्व कितना ही सुदृढ़ क्यों न हो लेकिन वह अपने सामाजिक परिवेश से कदापि बच नहीं सकता । वह जो कुछ लिखता है वह उसके स्वयं के परिवेश, शिक्षा और मूल्य संरचना की उपज लिखता है । उसकी व्याख्याएँ उसके व्यक्तिगत विश्वासों तथा जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण का परिणाम होती हैं ।

23.3 कारण और इतिहासकार:

कार्य कारण ही एक ऐसा सुगम साधन है जिसके सहारे इतिहास के प्रारम्भिक स्वरूप का अवलोकन आसानी से किया जा सकता है । ई. एच. कार के अनुसार – " इतिहास वहाँ से शुरू होता है जहाँ से इतिहासकार पहले तथ्यों का चुनाव करता है और फिर उन्हें महत्ता के अनुरूप क्रमबद्ध करता है । परिणामस्वरूप वे सामान्य तथ्य बाद में ऐतिहासिक तथ्यों का रूप धारण कर लेते हैं । " यह सर्वविदित है कि सभी तथ्य ऐतिहासिक तथ्य नहीं होते । यह भी उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक और अनैतिहासिक तथ्यों का अंतर स्थायी और जड़ नहीं होता अर्थात्, कोई भी तथ्य जिसका संदर्भ और महत्व मिल जाए ऐतिहासिक तथ्य की श्रेणी में आ सकता हैं । तथ्यों के समरूप कारणों के साथ इतिहासकार का रुख कार्यरत है। दूसरे शब्दों में कारणों के साथ इतिहासकार का संबंध ठीक वैसा ही दोहरा और अन्योन्याश्रित है जिस प्रकार तथ्यों के साथ। इतिहासकार की व्याख्या ही कारणों के चयन तथा क्रमबद्धता का निर्धारण करती है । इतिहासकार अपने अध्ययन में इतिहास के, अपने चुने गए क्षेत्र, या पक्ष में सम्बन्धित केवल उन तथ्यों को अंकित कर सकता है जो कारणों को सुदृढ़ बनाने में प्राथमिक रूप से महत्वशील हो अर्थात् संबन्धित तथ्यों के छोटे अंश से ज्यादा सम्मिलित नहीं कर सकता । यदि हम इतिहासकार की तुलना एक वैज्ञानिक से करें तो निष्कर्ष यही – रहेगा कि वैज्ञानिक की दुनिया की भाँति इतिहासकार की अपनी दुनिया वास्तविक जगत की फोटो आकृति नहीं होती बल्कि एक ऐसा ढाँचा या मॉडल होता है जिसके आधार पर अपनी दुनिया को अपेक्षाकृत सरलता से समझने एवं उस पर दक्षता हासिल करने की स्तरानुसार प्रभावपूर्ण तरीके से कोशिश करता है । इतिहासकार अतीत के उन अनुभवों को जिन तक वह सरलता से पहुँच सकता है और जो उसे अनुसंधान एवं तर्क पूर्ण

व्याख्या के सुयोग्य लगते हैं सार एवं तत्व ग्रहण करता है । तत्पश्चात इन्हीं से वह निष्कर्ष निकालता है जो उसका निर्देशन करते हैं. एक सच्चा इतिहासकार किसी घटना के कारणों की न केवल सूची बनाता है वरन् उन्हें व्यवस्थित और क्रमबद्ध भी करता है । और कारणों को उनके महत्वानुसार श्रेणीबद्ध करता है । एल. पाल ने तो मानव मस्तिष्क को कम्प्यूटर के समरूप मान लिया है। दी एन्नीहिलेशन ऑफ मैन" जो स्वयं उनकी कृति है में मानव मस्तिष्क की कार्य प्रणाली का चित्र प्रस्तुत करते हुए बताया कि – " कूड़े की बोरी में से " अवलोकिक तथ्यों को चुनता है उन्हें एक–एक कर सामने रखता हुआ सम्बन्ध अवलोकिक तथ्यों का क्रम भी देता रहता है । तथा उन समस्त असंबद्ध तथ्यों को किनारों पर फेंकता चलता है और इस प्रक्रिया को उस बिन्दु तक गतिशील रखता है जब तक कि वह "ज्ञान" की एक तक पूर्ण और युक्तियुक्त रजाई सिलकर तैयार नहीं कर लेता । " प्रो. ई. एच. कार हालांकि उक्त कथन से पूर्णतया सहमत नहीं हैं तथापि एक निश्चित दायरे में इसे स्वीकार करते हैं । कार के अनुसार – एल. पाल. का कथन इतिहास की मानसिक प्रक्रिया की तस्वीर है बशर्ते कि अनावश्यक व्यक्तिगत परकता के खतरे को एक सीमा तक स्वीकार किया जाए ।

इस प्रकार इतिहास तथ्यों एवं कारणों के चयन की ऐसी प्रक्रिया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण (तथ्यों एवं कारणों) चुनाव में सम्बन्ध रखती है । इस बात का समर्थन करते हुए हेलकार पार्सल ने भी अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं – "इतिहास एक चुनने की प्रक्रिया है। " इतिहासकार यथार्थ या वास्तविक कारणों को बोधगम्य एवं अनुभवगम्य बनाता है । जिस प्रकार इतिहासकार तथ्यों के अथाह महासागर से केवल उन तथ्यों को चुनता है जो उसके लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं ठीक उसी प्रकार वह कारण और कार्य या प्रभाव की व्यवस्थित श्रृंखलाओं में से केवल उनका चुनाव करता है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होते हैं । कारणों की क्रमबद्धता ही किसी इतिहासकार की सफलता का माप–दण्ड होती है चूँकि कारणों की क्रमबद्धता ही हमें घटनाक्रम एवं समय का बोध करवाएगी तथा समस्त असम्बन्धित कारणों के परित्याग में सहायक सिद्ध होगी ।

23.4 कारण तथा परिस्थिति:

कार्य की उत्पत्ति तभी सम्भव है जबकि कोई कारण उसके पीछे निहित हो अर्थात् कार्य कारण का घनिष्ठ संबंध होता है । संक्षेप में कार्य कारण से संबंध का अर्थ विभिन्न घटनाओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करना है । प्रश्न यह उठता है कि घटना क्या है? प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है घटना वह है जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक उथल–पुथल होती है । कुछ घटनाएँ परिस्थितियों वश उत्पन्न हो जाती है जिन्हें सहायक घटनाएँ कहा जा सकता है । मैडेलबाम ने इन घटनाओं को इस प्रकार स्पष्ट किया है । मैडेलबाम के अनुसार : – "प्रथम " को कारण तथा द्वितीय को परिस्थिति की संज्ञा दी जाती है । " इतिहास की कोई भी घटना एक घटना का परिणाम न होकर अनेक घटनाओं का सामूहिक परिणाम होती हैं । दूसरे शब्दों में कोई भी घटित होने वाली घटना अनेक कारणों का परिणाम होती है । उदाहरणार्थ – प्रथम विश्व युद्ध (1914 – 18) के क्या कारण थे? स्पष्ट है इसके पार्श्व में एक से अधिक कारण निहित थे । सर्वाधिक प्रभावपूर्ण या निर्णायक कारण का ज्ञान तभी संभव है जबकि तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके प्रभाव का गहराई से अध्ययन कर उसे ढूँढा जाए। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के मूल कारणों में भारतीयों की आपसी फूट ही नहीं बल्कि

तत्कालीन परिस्थितियाँ भी उतनी ही उत्तरदायी थी । इसी भाँति जर्मनी में नाजीवाद के उत्कर्ष के क्या कारण थे? समझने के लिए हमें वर्साय संधि 1929 – 30 के आर्थिक संकट एवं जर्मन जातिय परम्परा का ज्ञान होना अति आवश्यक है। अत: यह अति आवश्यक है कि एक इतिहासकार उस समय जबकि वह कारणों को क्रमबद्धता में संजोये कारण एवं परिस्थिति के अन्तर को भी पूर्णतया स्पष्ट करे । जब तक हम कारणों की परिस्थितियों का गहनता से अवलोकन नहीं करेंगे, कारण के निर्णायक प्रभाव अध्ययन असंभव है । इसका समर्थन करते हुए आंकशाट का कहना है – " परिस्थितियों की व्याख्या में ही कारण के स्पष्ट प्रभाव को ढूँढा जा सकता है ।

23.5 वास्तविक तथा आधारभूत कारण:

रेनियर इस सिद्धान्त के पक्षधर हैं कि कोई भी घटना एक से अधिक कारणों के परिणाम स्वरूप घटित होती है । लेकिन यह बिन्दु भी कम महत्वपूर्ण नहीं कि उक्त घटना के पार्श्व में एक आधारभूत एवं मूल कारण भी होता है । इतिहासकार का कर्तव्य किसी घटना के कारणों की व्याख्या के समय वास्तविक कारण के सन्दर्भ में मूल कारण के विस्तृत प्रभाव की व्याख्या करना है। इतिहासकार अपनी व्याख्या में घटना के वास्तविक कारण मूल कारण, सहायक कारण, आकस्मिक कारण तथा अंतिम कारण को महत्वानुसार क्रमबद्ध करता है । परन्तु प्रो. वाल्श का मानना है कि घटित होने वाली प्रत्येक घटना के कारणों के अन्तर्गत अंतिम कारण होना अनिवार्य नहीं है । प्रो. वाल्श के अनुसार – सभी कारणों के ऊपर कोई अंतिम कारण नहीं होता बल्कि सभी कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है। प्रो. ई. एच. कार ने उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । उदाहरण इस प्रकार है – जोन्स नाम का एक व्यक्ति जिसने अपनी क्षमता से अधिक शराब पी रखी थी, किसी पार्टी से कार चलाता हुआ घर लौट रहा था । कार की ब्रेक काम नहीं कर रही थी एक मोड़ पर जोन्स, रॉबिन्सन नामक एक व्यक्ति कोनुक्क्ड की दुकान से सिगरेट खरीदने के लिए सड़क पार कर रहा होता है, कुचलकर मार देता है प्रश्न यह उठता है इस दुर्घटना के क्या कारण हो सकते हैं (1) क्या इसका कारण दोषपूर्ण ब्रेक थे, वैसी हालत में उस गैरेज़ के मालिक के विरूद्ध कार्यवाही होनी चाहिए जिसने सप्ताहभर पहले उस कार की ओवरहालिंग की थी । (2) क्या चालक का शराब के नशे में कार चलाना इस दुर्घटना का कारण था? इस 'स्थिति में उसके विरूद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए । (3) या इस दुर्घटना का कारण सडक का तेज मोड था अत: सड़क विभाग के कर्मचारियों को दोषी ठहराया जाए । (4) या फिर रॉबिन्सन को दोषी ठहराया जाए जो सिगरेट पीता था । (5) यातायात नियन्त्रित करने वाले पुलिस के न होने के लिए पुलिस विभाग दोषी था ।

निष्कर्ष के तौर पर हम यही कह सकते हैं कि कारणों की व्याख्या में कुछ वास्तविक तथा तर्कयुक्त और कुछ दुर्घटना से सम्बन्धित एवं अतार्किक कारण होते हैं । यदि कार द्वारा प्रस्तुत उदाहरण से सम्बन्धित दुर्घटना के कारणों को युक्तियुक्त ढंग से सुधारा जाए दुर्घटना पर रोक लगाई जाए तब ये कारण तार्किक होंगे लेकिन यदि यह कहा जाए कि सिगरेट पीने वालों पर प्रतिबंध लगाया जाए तो यह कारण अतार्किक जा जाएगा उक्त परिस्थितियों के संबंध में इतिहासकारों के भिन्न–भिन्न मत हैं। कार के अनुसार–"उन कारणों की हम तार्किक कहेंगे जो दूसरे देशों दूसरे युगों तथा विभिन्न परिस्थितियों में लाग किया जा सके और जिनका प्रभाव निष्कर्षकयी हो । इस आधार पर सामान्यीकरण के माध्यम से कुछ नियमों का प्रतिपाद किया जा

सके। लेकिन यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि विशेष दुर्घटनात्मक कारणों का सामान्यीकरण सम्भव नहीं है अत: सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता ।

23.6 मूल्य सम्पृक्त व्याख्या

मूल्य सम्पृक्त व्याख्या के सम्बन्ध में प्रो. ई. एच. कार ने बताया है कि कारण कार्य के संबंध में इतिहासकार द्वारा की गई व्याख्या मूल्य सम्पृक्त एवं उद्देश्य परक होती है । अर्थात् इतिहास की व्याख्या के साथ मूल्यों के आधार पर गुण दोष विवेचन भी सम्मिलित रहता है । मूल्य सम्पृक्त व्याख्या विवेचन भी सम्मिलित रहता है । मूल्य सम्पृक्त व्याख्या के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों के विचार भिन्न–भिन्न हैं। मैनिक के अनुसार– "इतिहास में कार्य कारण सम्बन्धी की खोज मूल्यों के संदर्भ के बिना असम्भव है..... कारणों की खोज के पीछे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मूल्यों की खोज अत्यंत आवश्यक होती है । " प्रो. ई. एच. कार ने अपने विचार इस प्रकार रखे हैं – "इतिहास का कार्य व्यापार दोहरा और अन्य पर आश्रित होता है । वह वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में अतीत के बारे में हमारे ज्ञान को विस्तृत करता है और अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान के बारे में। प्रो. वाल्श ने भी मूल्य सम्पृक्त व्याख्या को स्वीकृत किया है । कार्ल मार्क्स इस विचारधारा का कट्टर समर्थक है । उदाहरणार्थ– रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों की व्याख्या में गिबन ने नैतिक एवं धार्मिक कारणों पर विशेष रूप से जोर दिया । यद्यपि प्रो. वाल्श मूल्य सम्पृक्त व्याख्या को स्वीकार करता है तथापि उसका मत इस प्रकार है – "इतिहासकार की व्याख्या साक्ष्य प्रधान होनी चाहिए न कि मूल्य संपृक्त । दूसरे शब्दों में इसे इस तरह और स्पष्ट किया जा सकता है कि इतिहास लेखन में साक्ष्यों को प्रधानता देने का अर्थ मूल्यों को सहायक के स्थान पर रखना है । यह निःसन्देह सत्य है कि प्रत्येक इतिहासकार अपना लेखन कार्य साक्ष्यों की परिधि में रहकर ही करता है । फिर भी इतिहासकार की अपनी रूचि पर निर्भर करता है कि वह कारणों की क्रमबद्धता में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों में किस प्रकार वरीयता कम निश्चित करें । उसका दृष्टिकोण मूल्य सम्पृक्त होता है ।

23.7 व्यक्तिगत दृष्टिकोण

यह कहावत अत्यधिक प्रचलित है कि जितने मुंह उतनी बातें । अर्थात् घटित होने वाली किसी भी घटना के कारणों की व्याख्या में घटना को प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने दृष्टिकोण से देखता है। प्रत्येक व्यक्ति के विचार कुछ भिन्न हो सकते हैं । लेकिन यह बात सत्य है कि. उनकी व्याख्या में यर्थाथता होती है । उदाहरणार्थ –अ एक व्यक्ति होता है । जिसकी क और ख व्यक्ति गोली मार कर हत्या कर देते हैं । उक्त घटना के सम्बन्ध में एक साधारण व्यक्ति के दृष्टिकोण में हत्यारों के द्वारा गोली से अ की हत्या कर दी गई । इसी घटना के संबंध में यदि किसी चिकित्सक से पूछा जाएगा तो वह यही कहेगा कि गोली लगने से अ के शरीर में गम्भीर घाव लग गए थे परिणामस्वरूप अधिक खून बहने से उसकी मृत्यु हो हुई । कुछ लोगों का दृष्टिकोण होगा कि यह बदले की भावना थी । अर्थात सभी ने गोली लगने से मृत्यु को स्वीकार किया फिर भी उनके सोचने का ढंग कुछ भिन्न था । उन्होंने अ की मृत्यु के कारणों को भिन्न–भिन्न रूप में प्रकट किया । इतिहास मृत्यु का कारण कुछ गहराई में जाकर ढूंढता है अर्थात वह मृत्यु के कारण आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के परिवेश में ढूंढता है । यहां सभी लोगों के व्यक्तिगत दृष्टिकोण का पारस्परिक सम्बन्ध है ।

मानव व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण ही इतिहास का उद्देश्य होता है । इतिहासकार का अपना अनुभव परिकल्पनात्मक एवं अनुमानित होता है । अत: वह सभी साक्ष्यों का अध्ययन करने के उपरान्त थी निष्कर्ष नहीं देता । चूंकि निष्कर्ष के अन्तर्गत कल्पना एवं अनुमान की व्याख्या को विश्वसनीय नहीं माना जाता है । उसका निष्कर्ष किसी भी व्यक्ति अथवा घटना के सम्बन्ध में साक्ष्यों के आधार पर व्यक्तिगत न्याय माना जाता है और व्यक्तिगत दृष्टिकोण के जरिए उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष का प्रभावित होना परम्परागत एवं न्यायपूर्ण है ।

23.8 निहित भविष्य

इतिहास के अध्ययन में कार्य–कारण से सम्बन्धित अध्ययन के तहत वर्तमान कोई महत्व नहीं होता । अर्थात् अतीत और भविष्य का संबंध घनिष्ठ होता है और उसमें वर्तमान की दरार मात्र होती है। कार के अनुसार:– " अतीत और भविष्य के बीच एक काल्पनिक विभाजन रेखा के अतिरिक्त वर्तमान का कोई अस्तित्व नहीं होता ।..... यह दिखाना अत्यंत सरल होगा कि अतीत में रूचि लेने के साथ भविष्य में रूचि लेना जुड़ा है चूंकि अतीत और भविष्य एक ही समय विस्तार के दो हिस्से हैं ।" अतीत ज्ञान का भण्डार है और उसकी परम्पराओं को भविष्य में भी अपनाना चाहिए ताकि हमारा भविष्य सुरक्षित रहे । यहाँ यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं कि जब लोग अपने वर्तमान में नहीं जीते और अपने भविष्य एवं वर्तमान के सम्बन्ध में रूचित लेते हैं तो ऐसी स्थिति में हम प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक विभाजन की रेखा को भी पार कर देते हैं । इतिहास का यह मुख्य उद्देश्य होता है कि उसमें निहित परम्पराओं को आगे बढ़ जाए यहां परम्परा का अर्थ होता है अतीत की आदतें एवं सबक को भविष्य में सागर में ले जाना । चूंकि अतीत के अभिलेख में भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखते हैं। सभी इतिहासकार इस बात का समर्थन करते हैं कि इतिहास के अन्तर्गत कार्य' कारण सम्बन्ध में भविष्य निहित होता है अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। डेनमार्क का इतिहासकार इस सम्बन्ध में लिखता है – ऐतिहासिक चिंतन हमेशा उद्देश्य वादी होता है । " सर चार्ल्स ने रदरफोर्ड के विषय में लिखा है कि – " सभी वैज्ञानिकों की भांति.... उनकी हड्डियों में भविष्य निहित था, लेकिन वे कभी नहीं सोचते थे कि इसका अर्श क्या है? इसी का समर्थन करते हुए कार ने लिखा है कि " अच्छे इतिहासकारों की हड्डियों में भविष्य होता है – चाहे वे इसके संबंध में सोचे या न सोचे। " इतिहास के अन्तर्गत अक्सर यह पूछा जाता है " क्यों " लेकिन कभी–कभी इसके अलावा इतिहासकार एक और प्रश्न किधर–किधर " भी पूछ लेते हैं ।

23.9 इतिहास में संयोग

इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं किन्हीं कारणों की श्रृंखला से जन्म नहीं लेती, बल्कि अचानक संयोग से उपस्थित किसी कारण के परिणाम होती है। हीगल– और मार्क्स की नियमिवाद की अनेक विचारकों ने आलोचना इसलिए की थी क्योंकि उन्होंने इतिहास में संयोग की भूमिका को स्वीकार नहीं किया था। ई. एच. कार के अनु सार " इतिहास कमोबेश संयोग का एक अध्ययन है । घटनाओं का एक ऐसा क्रम है जिसका निर्णय संयोग करते है । और उनके कारण भी अपेक्षाकृत सामान्य होते हैं । छोटे – छोटे संयोग इतिहास के घटना कम पर इतना प्रभाव डालते हैं कि उसे पूर्णत: बदल देते हैं । प्रो. ई. एच. कार ने कुछ रोचक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। ऐक्टिअम के युद्ध के फल क्लिओपेट्रा के प्रति ऐन्टैनी के आकर्षण पर आधारित था। गठियाग्रस्त

होने के कारण बजाजेट मध्य यूरोप पर आक्रमण करने में असमर्थ रहा । जब 1920 में यूनान के राजा एलेक्जेंडर की उसके पालतू बन्दर के काटने से मृत्यु हो गई तो उसके बाद घटनाओं का एक क्रम सा चला दिया जिसके सम्बन्ध में विस्टन चर्चिल ने लिखा था कि – इस बन्दर के काटने से विश्व युद्ध सा छिड़ गया और करीब ढाई लाख लोग मारे गए। 1923 की शरद ऋतु में बत्तखों का शिकार करते हुए ज्वर ग्रस्त होने के कारण ट्राद्दस्वी अपने विरोधी स्टॉलिन और जिनोविएव कामनेव के साथ छिड़े संघर्ष में बाध्य निष्क्रिय हो गया । इन सब घटनाओं के पार्श्व में कोई कारण न होकर संयोग मात्र होता है ।

इतिहास में संयोग की भूमिका को प्रथम अभिव्यक्ति पोलिनियम ने दी जो एक रोमन इतिहासकार था । टेसिटेस दूसरा प्राचीन इतिहासकार था जिसने संयोग पर विस्तृत विचार प्रकट किए । गिबन ने भी रोमन साम्राज्य के उदय को संयोग का ही परिणाम माना है । इस सम्बन्ध में गिबन ने लिखा है – यूनानियों ने अपने राज्य को सिकुडकर एक जिले में सीमित हो जाने पर रोम की विजय को उनकी श्रेष्ठता के आधार पर न मानकर गणराज्य को भाग्य के साथ जोड़कर देखा । कार के अनुसार– " इतिहास में संयोग तत्व के महत्व पर बल देने की प्रवृति का पुनरारंभ ब्रिटिश इतिहासकारों में अनिश्चय तथा आशंका की मन: स्थिति के विकास से होता है जो वर्तमान शताब्दी के साथ उदय हुई और लगभग 1914 ई. के बाद स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगी । ब्रिटिश इतिहासकार करी ने एक लम्बे समय बाद 1909 में इस प्रवृति को स्वर दिया उसके लेख जिसका शीर्षक " डार्विनिज्म इन हिस्ट्री " था में संयोग, के सम्बन्ध में लिखा कि – " संयोग संघटन के तत्व सामाजिक विकास की घटनाओं को निर्धारित करने में सहायता करते हैं । " करी ने बाद में अर्थात् 1916 में इस विषय पर " क्लिओपेट्राज नोज " शीर्षक नाम का एक और निबन्ध भी लिखा । इतिहास में संयोग विषय के संबंध में एच.ए.एल. फिशर ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया – हमें इतिहास में असम्भावित और अदृश्य की सक्रियता को पहचानना चाहिए। इतिहास दुर्घटनाओं का एक अध्याय होता है । " फ्रांसीसी दार्शनिक की एक शाखा ने इस सिद्धान्त की लोकप्रियता को बढ़ा दिया है । जिसके अनुसार अस्तित्व का न कोई कारण होता है न कोई तर्क और न ही कोई आवश्यकता । जर्मनी का एक अनुभवी इतिहासकार भी अन्ततः इस सिद्धान्त अर्थात् इतिहास में संयोग से अत्यधिक प्रभावित हुआ जबकि शुरू में आलोचक था । बाद में उसने रौके नाक इतिहासकार की आलोचना भी की और प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत राष्ट्रीय संकटों का उत्तरदायित्व दुर्घटनाओं के एक सिलसिले पर डाला था । इन दुर्घटनाओं में प्रमुख कैसर का अहंकार – हिटलर का सम्मोहन, वाइमर, गणतन्त्र के अध्यसा पद पर हिडेन वर्ग का चुनाव इत्यादि थी । शुरूआत में इस प्रश्न पर मार्क्सवादियों को भी दिखते हुई थी । मार्क्स ने इस सम्बन्ध में लिखा कि – " यदि विश्व इतिहास में संयोग के लिए कोई स्थान नहीं होता तो इसका चरित्र बड़ा ही रहस्यवादी होता । यहां संयोग अपने आप में स्वाभाविक रूप से विकास की सामान्य प्रवृत्ति का हिस्सा बन जाता और अन्य प्रकार के संयोगों द्वारा प्रतिफलित होता है । जिनमें उन लोगों के संयोग चरित्र भी सम्मिलित होते हैं । जो आरम्भ में एक आन्दोलन का नेतृत्व करते है। " ट्रादस्की ने अपनी पुस्तक माई लाईफ 1930 के अंतर्गत एक नई तुलना देकर इस सिद्धांत को बताया है । उसके अनुसार दुर्घटनाएं किसी कमी को पूरा करती है और खुद को ही रह करती है । ट्रस्टुस्की ने लिखा है कि – " संपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया दुर्घटनात्मक के माध्यम

से ऐतिहासिक नियमों का परावर्तन हैं । जैविकी की भाषा में कह सकते हैं कि दुर्घटनाओं के स्वाभाविक चुनाव के माध्यम से ऐतिहासिक नियमों को समझा जा सकता है। "

23.9.1 इतिहास में संयोग – आलोचना:

कतिपय इतिहासकार दुर्घटना का संयोग के विषय में अपना मत यह भी प्रस्तुत करते है कि इतिहास में संयोग को किसी घटना का मूल समझना हमारे अज्ञानता का प्रतीक है । अर्थात् जिसे हम समझ नहीं पाते दुर्घटना मान लेते हैं । वाल्श के अनुसार – " इतिहास में न तो कोई दुर्घटना होती है और न कोई हस्तक्षेप करता है । इसी प्रकार ओकशाट ने लिखा है कि – "इतिहास में किसी अदृश्य शक्ति के हस्तक्षेप को स्वीकार करने का अर्थ इतिहास को अनैतिहासिक स्वरूप प्रदान करना होगा । और इतिहास के संयोग का अर्थ हैं दो स्वतंत्र कारणों के टकराव से उत्पन्न किसी तीसरे कारण की उत्पत्ति । इतिहासकार ई. एच. कार ने आलोचना की मस्तिष्क का दिवालियापन हैं । तृतीय श्रेणी के विद्यार्थियों के बीच यह दृष्टिकोण कि परीक्षा एक लाटरी हैं, हमेशा लोकप्रिय होगा । "

टोल्सटोय ने इतिहास में संयोग की आलोचना करते हुए लिखा है कि – "हम असंगत घटनाओं अर्थात ऐसी घटनाओं की जिनकी संगति हमारे समझ में नहीं आती व्यवस्था के लिए भाग्यवाद का सहारा लेने को बाध्य हो जाते हैं । टोल्सटोय के उपर्युक्त विचारों के संबंध में ई. एच. कार ने लिखा हैं – " यह दृष्टिकोण कि इतिहास में दुर्घटना हमारे अज्ञान की मापक हैं । यानि जिसे हम समझ नहीं पाते केवल उसे दिया गया नाम है । जो अपूर्ण हैं । इसमें संदेह नहीं कि कभी– कभी ऐसा होता हैं जब नक्षत्रों की नियमित गति के विषय में लोग नहीं जानते थे । और वे मानते थे कि वे आकाश में निरुद्देश्य भाव से चक्कर लगाते हैं तो उन्हें नाम दिया गया जिसका अर्थ होता हैं, घुमक्कड ।

संयोग के विषय में यह मत है कि हमारे अज्ञान का प्रतीक हैं प्रो. कार इसे अपूर्ण मानते हैं । इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए उन्होंने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा हैं कि " किसी चीज को गलत संयोग मानना उसके कारण की खोज करने के परिश्रम से बच निकलने का एक सस्ता नुस्खा हैं और जब कभी कोई मुझ से कहता हैं कि इतिहास दुर्घटनाओं का एक अध्याय हैं जो मुझे शक होने लगता हैं कि वह बौद्धिक रूप से काहिल तथा अक्षम हैं । " इस अर्थ में दुर्घटनात्मक कुछ भी नहीं होती हैं । जिसे दुर्घटना कहा जाता है उसकी भी तर्कसंगत रूप से व्याख्या की जाती हैं । घटनाओं के व्यापक स्वरूप के साथ उसकी संगति भी खोजी जा सकती हैं।

इतिहास में संयोग तथा दुर्घटना के महत्व के विषय में इसके समर्थकों ने जो तर्क रखे वे बिल्कुल सच और एकदम अकाव्य प्रतीत होते हैं – फिर भी इससे यह. प्रमाणित नहीं हो जाता कि वे वास्तविक और मान्य हैं । यद्यपि इनमें कारण और कार्य की श्रृंखला रहती हैं । लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से यह श्रृंखला संदर्भहीन होती हैं । इतिहासकार के यहाँ इनका महत्व नहीं होता क्योंकि इनकी कोई तार्किक व्याख्या नहीं होती और अतीत एवं वर्तमान के लिए इनका कोई अर्थ नहीं होता। यह पूर्णत: स्पष्ट एवं सत्य हैं कि किलओपेट्रा की नाक, बज़ाजेट का गठिया, अलेक्जेन्डर को बन्दर का काटना, ट्राटस्की का ज्वर आदि इसके स्पष्ट परिणाम हैं । किन्तु इससे यह सामान्य ऐतिहासिक नियम नहीं बनता कि महान सेनापति युद्ध इसलिए हार जाते है कि वे सुन्दरियों के प्रति आसक्त हो जाते हैं या कि युद्ध इसलिए होते हैं कि राजा लोग बन्दर पालते हैं

या कि लोग सड़कों या गाडियों के नीचे कुचलकर इसलिए मरते हैं कि उन्हें धुम्रपान की लत हैं आदि । इसलिए संयोग अथवा दुर्घटना को ऐतिहासिक कारण नहीं माना जा सकता है । कार के अनुसार कारण स्पष्ट हैं कि " दुर्घटनात्मक कारणों का संयोगों का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता, अर्थात उनसे सामान्य नियम नहीं बनाये जा सकते क्योंकि वे पूर्णतया विशिष्ट होते हैं । अत: न तो उनसे कोई सबक सीखा जा सकता है और न उनसे कोई निष्कर्ष ही निकाले जा सकते हैं ।

23.10 इतिहास में नियतिवाद

इतिहास का दर्शन क्या है? प्रत्युत्तर में यही कहा जाएगा कि एक विशेष लक्ष्य की ओर नियोजनानुसार प्रक्रिया के रूप में इतिहास का वर्णन ही इतिहास का दर्शन है । और जब इसे कारणात्मक रूप से निर्धारित योजना मान लिया जाए तो यह नियतिवाद हो जाएगा । इस प्रकार नियतिवाद एक विश्वास हैं कि जो कुछ भी घटित होता हैं उसके एक या अनेक कारण होते हैं और जब एक कारणों में परिवर्तन नहीं होता वह भिन्न तरीके से घटित भी नहीं होते हैं । क्रोचे ने " आइडल जीनीसस एण्ड डिसोल्युसन ऑफ द फिलोसोफी ऑफ हिस्ट्री " में उपर्युक्त दोनों सिद्धांतों पर प्रकाश डाला है। दोनों सिद्धांतों में त्रुटि बताते हुए लिखा है कि इतिहास के तथ्यों को प्राकृतिक रूप से देखा हैं । ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या मानवीय दृष्टिकोण, उद्देश्य, लक्ष्य और हित इत्यादि को अभिव्यक्ति के रूप में करने में असमर्थ रहे हैं। इनको केवल इतिहासकार की अन्तदृष्टि तथा समझ द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है ।

अलैक्लेण्डर के मतानुसार " नियतिवाद का अर्थ यह है कि यदि आंकडे सही हैं तो जो कुछ होता हैं निश्चित होता हैं और कुछ और नहीं हो सकता । यह मानना हैं कि यह तभी भिन्न हो सकता है जब आंकडे भिन्न होते हैं । नियतिवाद की समस्या इतिहास मात्र की समस्या न होकर सम्पूर्ण मानव जाति की समस्या है । यह स्पष्ट हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी कारण से कार्य करता हैं । बिना कारण के कार्य करने वाला व्यक्ति अमूर्त होता हैं जो समाज के बाहर उपलब्ध हो सकता हैं। प्रो. ई. एच. कार ने पॉपर के इस कथन का खण्डन किया हैं कि माननीय कार्य व्यापार में कुछ भी सम्भव हैं । कार की मान्यता हैं कि यह व्यक्तव्य या तो अर्थहीन हैं अथवा मिथ्या हैं । सामान्यत: जीवन में इस वक्तव्य पर कोई भी विश्वास नहीं कर सकता ।

ऐतिहासिक नियतिवाद एक ऐसा मत हैं जो यह प्रदर्शित करता हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रिया जैसे :– इसकी समग्रता पूर्व में ही निश्चित होती हैं । यद्यपि कोई व्यक्ति अपने विचारणीय क्षमता पर कितना ही गर्व महसूस करे लेकिन अंतत: उसे पूर्व निर्धारित घटनाक्रम के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है । इस प्रकार ऐतिहासिक नियतिवाद का प्रश्न इतिहास के घटनाक्रम के पूर्व निर्धारित को स्वीकार करने या न करने से है । कुछ इसे स्वीकार करते हैं और कुछ नहीं भी जबकि अन्य कुछ ऐसे भी होते हैं जो दोनों स्थितियों में तटस्थ रहते हैं । यदि नियतिवाद का संपूर्ण विचार संक्षेप में एक शब्द के रूप में प्रकृत करे तो उसके लिए " अपरिहार्यता" शब्द का उपयोग किया जा सकता है जिसकी उत्पत्ति नियतिवादी संकल्पना के कारण ही हुयी । हीगेल और मार्क्स की इतिहास संकल्पना नियतिवादी हैं । यद्यपि इतिहास में भविष्यवाणी करना मुश्किल एवं असम्भव हैं तथापि एक बार घटित हो जाने वाली घटना पर स्वीकार्य व्याख्यायें सम्भव हैं । उदाहरणार्थ यदि किसी जासूसी, उपन्यास का हम अंत नहीं लेकिन परंतु एक बार जान जाए तो समझ जाते हैं कि यह इस प्रकार ही होगा न कि किसी अन्य प्रकार से। समस्त

व्याख्यायें अतीतकालीन होती हैं, भविष्य कथन आने वाले समय के लिए होते हैं एवं नियतिवाद की अपरिहार्यता भविष्यवाणी तुलना में व्याख्यात्मक ही होती हैं । इसलिए यदि भविष्य के विकल्पों में चयन की. स्वतंत्रता प्रदान कर दी जाए तो भी प्रत्येक घटना के कारणों की परस्पर प्रतिस्पर्धा नहीं होती है । इसको स्वीकार करते हुए इतिहासकार स्करीवन कहता है – "इतिहासकार यह खोजने के लिए अपने मस्तिष्क दौड़ा चुके हैं कि भविष्य भविष्यवाणियों से भिन्न होता यदि प्रारम्भिक बिंदु पर मौका मिलता। " इतिहास में कई कल्पनाशील बातें इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित कर चुकी हैं । जैसे " यदि ऐसा होता तो क्या होता । उदाहरणार्थ – अगर नेपोलियन वाटरलू का युद्ध जीत लेता? यहां यह ध्यान रखने योग्य है कि इतिहासकारों का कार्य भविष्य बताना नहीं होता । इतिहासकार केवल अपने रिक्त समय में अग्रदूत हैं ।

ऐतिहासिक नियतिवाद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषणा असर्थिक नियतिवाद हैं । इस सिद्धांत को एजिल्स ने अपनी कृति "एन्टी डुहरिंग" में अच्छी तरह समझाते हुए लिखा है कि समस्त अतीतकालीन इतिहास सिवाय पुरातत्व काल के वर्ग–संघर्ष का इतिहास था । समाज के ये संघर्षरत वर्ग सदैव उत्पादन के साधनों के परिवर्तन और तरीकों के परिणाम हैं । " हीगल और मार्क्स इतिहास के द्वन्द्वात्मक सिद्धांत में विश्वास रखते हैं । 'लियोनाई और किंगर कहते हैं कि मार्क्स और एजिल्स वर्ग को एक आर्थिक घटक के रूप में अलग करते हैं वर्ग से जिसके बारे में इसके सदस्य जागृत होते हैं और इसे झूठी चेतना के सिद्धांत द्वारा स्पष्ट करते हैं । वे निष्कर्ष निकालते हैं कि लिखित इतिहास झूठी चेतना का इतिहास सत्र हैं और यह हैं कि ऐतिहासिक घटनाओं को समझने की सच्ची कुंजी इतिहास नहीं होकर द्वन्द्वात्मक सिद्धांत है । हीगल की मान्यता थी कि विश्वात्मा इतिहास के माध्यम से कार्य करती है । इतिहास दर्शन इतिहास का विवेकपूर्ण विचार ही है । "जबकि मार्क्स की मान्यता है कि – "मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निश्चय नहीं करती वरन् व्यक्ति का सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना का निश्चय करता है । " लेकिन गारदिनर, हीगल और मार्क्स के नियतिवाद में अंतर स्पष्ट करता है । यद्यपि दोनों ही नियतिवाद की व्याख्या करते हैं लेकिन हीगल अधिभौतिकी की अवधारणा की दुनिया में और मार्क्स जीवन और अनुभवों के कठिन और ठोस तथ्यों पर आधारित था । पोपर मार्क्स की इस विचारधारा को स्वीकार नहीं करता है वैज्ञानिक विधि इतिहास के लिए उपयोगी हैं और किसी प्रकार के नियतिवाद को स्वीकार नहीं करता ।

नियतिवादी अवधारणा एक ऐ सी अवधारणा हैं जिसके तहत इतिहासकार सर्व प्रथम तथ्यों को एकत्रित करता है तदुपरांत उन तथ्यों का कारणात्मक रूप से संबंध करता है । यद्यपि तथ्य अपने आप में निर्बुद्ध एवं वास्तविक होते हैं तथापि वे विज्ञान के प्रकाश में नहीं चमकते और न ही उन्हें बौद्धिकृत किया जा सकता है । इन्हें बुद्धिपूर्ण बनाना तभी सम्भव है जबकि कारणों के रूप में अन्य तथ्यों के साथ इनका समन्वय किया जाए । यह सर्वविदित है कि जब तथ्यों को आपस में जोड़ा जाता है तो वह एक श्रृंखला सी बना लेते हैं और फिर यह श्रृंखला अविरल सी चलती रहती है लेकिन ऐसा कोई अंतिम कारण नहीं होता जिसके द्वारा उस श्रृंखला को पूरा किया जा सके । इस दिशा में कुछ इतिहासकारों ने प्रयास किया भी है उदाहरणार्थ होने ने युग और प्रजाति को एक जैसा माना है लेकिन उनका यह मत सर्वमान्य न बन सका । मिश्र के ममी भी कोई तथ्य नहीं है । यद्यपि वे हजारों वर्षों तक रहेगी फिर भी समाप्त तो होना ही है ।

अर्थात उसमें थोडा बहुत परिवर्तन अवश्यभावी है । आवातीत लक्ष्य की खोज इतिहास का दर्शन है । और इस इतिहास के दर्शन का जन्म भी नियतिवाद अवधारण से होता है ।

सामान्य व्यक्ति और इतिहासकार दोनों ही कारणों की अनिवार्यता को स्वीकार करते है । स्पष्ट है कि मानवीय कार्य–व्यापार के पीछे कारण निहित होते हैं और इन्हें स्पष्ट किया जा सकता है । यदि हम इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते हैं तो दैनिक जीवन की भांति इतिहास भी असम्भव हो जाएगा । प्रो. ई.एच. कार की स्पष्ट मान्यता है कि – "इतिहास में कुछ भी अनिवार्य नहीं होता, सिवाय एक–एक ओपचारिक अर्थ में कि अगर यह घटना किसी और तरह घटित होती तो उसके कारणों को निश्चय ही भिन्न होना चाहिए । एक इतिहासकार के रूप में मेरा काम अनिवार्य अपरिहार्य, अटल और अपरिहार्य तक बिना भी चल सकता है ।

प्लेसनोग उच्च शिक्षा प्राप्त रूसी समाजवादी आन्दोलन का सम्मानीय सदस्य था । उसने लेनिन के अनुसार इतिहास में व्यक्ति की भूमिका पर लेखा लिखा । और सहमत हुए कि "महान व्यक्ति इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है लेकिन इसका प्रभाव इस युग की सामाजिक व्यवसाय और कार्य करने वाली सामाजिक ताकतों पर निर्भर करता है । लेकिन वह स्पष्ट हो सकता है कि महान व्यक्ति आखिर में अस्तित्व में क्यों आता है । वह मात्र इतना कहता है कि युग विशेष की सामाजिक ताकतें महान आदमी उत्पन्न करती है । वह दो दृष्टिकोणों नियतिवाद और उन्मुक्तता में सामंजस्य स्थापित करता है । उसका मानना है कि मानवीय इच्छा की भौतिकवादी अवधारणा कुछ अनिवार्यता को स्वीकार करती है । अर्थात यह नहीं लेकिन यह संघर्ष समाप्ति का मार्ग नहीं है ।

प्रसिद्ध लेखक बकल जिसे " हिस्ट्री ऑफ सिविलाजेशन इन इग्लैण्ड" लिखी कहता हैं कि – " यह स्वीकार करना आवश्यक है कि जब हम कोई कार्य करते हैं तो हम इसे किसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही करते हैं और ये प्रेरणाएं कुछ पूर्वकालीन घटनाओं का परिणाम है और यह इसलिए अगर हम समस्त पूर्वकालीन घटनाओं और गतिक्रम के समस्त नियमों से परिचित होते तो हम स्थिति में बिना गलती किये उनके समस्त परिणामों भी भविष्यवाणी कर देते ।

कोसे ने ऐतिहासिक नियतिवाद को कुछ अलग दृष्टिकोण से ही व्यक्त किया है । उसने बताया है कि यह उन्नीसवीं सदी के इतिहासकारों की इस कहावत का सारांश है " अपेरेटरी कलेक्शन डेस ला रिचर्सेचे डेस कांजेज जिसका तात्पर्य है पहले तथ्यों को इकट्ठा करो फिर उन्हें कारणों के अनुसार जोडो । डोसे का मानना है कि हम उन कारणों को ढूंढने में कभी सफल नहीं होंगे जो अन्तिम रूप से श्रृंखला को जोड़ा जा सके । अत: पिछली घटनाओं के कारणों को ढूंढने की असम्भाव्यता न केवल कारणों की बहुगुणता है बल्कि उनमें से कई की अदृश्यता भी है । अतएव कारणात्मक श्रृंखला बनाने की हमारी अयोग्यता जो घटनाओं को निश्चित कर सके, नियतिवाद सिद्धांत अस्वीकार्य है ।

ऐतिहासिक नियतिवाद आधुनिक युग की ही उपज है । यह माना जाता है कि धार्मिक लोगों में सभी जगह भाग्यवाद विचारधारा प्रचलित थी । लेकिन यह ईश्वरीय कृपा से पूर्णतया प्रभावित थी। प्राचीन यूनानी शुरू में तो नियतिवाद की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते थे । लेकिन बाद में समर्थक बन गए । इतिहास को मात्र मानव की मूर्खता एवं अपराधों की कहानी बताने वाले वालेयर और गिब्बन जैसे बुद्धिवादी भी इतिहास के नियतिवादी दृष्टिकोण से सहमत नहीं है । मार्क्स ने नियतिवाद को उसके अनुयायियों और अनुक्रतिकारों में स्थापित सत्य माना है

। मार्क्स ने भौतिकवादी विवेचन और द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का विचार हीगल से प्राप्त किया और उसे अपने उद्देश्यात्मक परिवर्तित कर उसका कट्टर समर्थक बन गया । ओसवाल्ड स्पेग्लर ने अपने शास्त्र " डाक्टराईन ऑफ द वेस्ट " में ऐतिहासिक नियतिवाद को बड़े ही दिलचस्प एवं सशक्त रूप से प्रतिपादित किया है। पोपर नियतिवाद पर विस्तृत रूप से विचार प्रकट करता हुआ सुझाव देता है कि समस्त मर्यादित समाज तथा निरंकुश एवं सिद्धांतवादी एक बार तो नियतिवादी होते है और एक प्रवचनपूर्ण सिद्धांत पर चलते है । " पोपर ने अपनी पुस्तक " ओपन सोसायटी एण्ड इटस एनेमिज " में इस दर्शन को जो सैनिक समाज की विचारधारा पर शासन करता है अप्रासंगिक बताते हुए बुरी तरह लताड़ा है । संदर्भ के रूप में मार्क्स को लिया है और सकारात्मकतावादी के रूप में प्लोटों से टायम्बी तक को प्रस्तुत करता है । जो एक आदर्शवादी अथवा कठोर सामाजिक विभाजन के वर्गीकृर्ता हैं तथा एक या अन्य प्रकार के भविष्यवक्ता है । मार्क्स ने स्पेग्लर को एक विद्वान लेखा नहीं माना । इसी भांति वह टायम्बी को एक नियतिवादी मानता था लेकिन टायम्बी स्वयं के कथानुसार ऐसा नहीं है । गै का कहना है कि – इतिहास के प्रति टायम्बी के विचार दुख उत्पन्न करते हैं । इधर टायम्बी स्वयं भी स्पेग्लर की आलोचना करता हुआ लिखता है कि वह अज्ञानी सिद्धांतवादी और नियतिवादी है । टाल्सटाय जो कि एक प्रसिद्ध इतिहासकार है ने नियतिवाद पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि – "इतिहास की विषय–वस्तु मनुष्य की इच्छा नहीं है । जिसने इन विरोधाभासो का संयोजन जिन्हें स्वेच्छा और अपरिहार्यता कहा जाता है पहले ही स्थित हैं । "

ऐतिहासिक नियतिवाद के प्रश्न को सर्वाधिक उचित प्रकाश में लाने का श्रेय सम्भवत: बर्लिन को जाता है। उसने अपने लेख " हिस्टोरिकल इनवेटिबिलीटी" में ऐतिहासिक नियतिवाद को परिभाषित करते हुए बताया है कि – "यह एक ऐसा प्रस्ताव हैं जिसे हम कहते हैं या भुगतते हैं एक निश्चित प्रारूप का हिस्सा है । उसका कहना हैं कि हमारे पास खुला विकल्प स्वतंत्र चयन एवं नियतिवाद है । अगर इस आधार पर चयन किया जाता है तो उसे पूर्णत: कारणात्मक व्याख्या द्वारा दर्शाया नहीं जा सकता । यह केवल जीव या भौतिक विज्ञान में स्वीकार्य योग्य है । बर्लिन यह स्वीकार करता है कि स्वेच्छा एवं नियतिवाद के मध्य उत्पन्न विवाद अन्य के लिए उपयुक्त विषय हो सकता है । लेकिन इतिहासकारों को जिनका संबंध आनुभविक मामलों से होता है कभी दुखी नहीं होना चाहिए ।

स्वेच्छा के सम्बन्ध में यदि हम गहराई से सोचे तो पायेंगे कि मनुष्य उतना स्वतन्त्र नहीं है जितना वह अक्सर सोच लेता है या होना चाहता है । चूंकि वह समाज में अनेक व्यक्तियों से जुडा रहता है । जहां उनकी इच्छाओं को एक दूसरे पर थोपा जाता है । इस प्रकार स्वेच्छा की परिधि आवश्यकतानुसार सीमित ही रहती है । और परिचितों, सम्प्रदायों एवं नागरिकों की व्यत्क्रमानुपाती होती है । यहां यह ध्यान देने योग्य है कि यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त संदर्भ के बिना कोई कार्य करता है तो वहां उसकी इच्छा सर्वशक्तिमान होती है लेकिन यह प्रश्न बडे प्रश्न की ओट में छिप जाता है कि क्या ऐतिहासिक प्रक्रिया नियत है ।

इतिहास की नियतीवादी अवधारणा तथाकथित इतिहास के दर्शन की अवधारणा का खण्डन करती है । जो न केवल निरीक्षण से बल्कि तार्किक रूप से भी प्रमाणित होती है । कारण स्पष्ट हैं कि इतिहास का दर्शन केवल यथार्थ को भावातीत अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता हैं । जबकि नियतिवादी अवधारणा सर्वव्यापी का । यह निश्चित रूप से लेकिन अपर्याप्त तथा झूठे रूप

में सर्वव्यापी हैं । चूंकि नियतिवादी सर्वव्यापी होना चाहता है । लेकिन हो नहीं पाता जबकि विपरीत पर्याय कितने ही प्रबल क्यों न हो यह भावातोतता में परिवर्तित हो जाता है । इतिहास का दर्शन भावातीत होता है एवं इतिहास की नियतिवादी एवं प्रकृतिवादी अवधारणा असत्य एवं सर्वव्यापी के रूप में होती है ।

नियतिवादी अवधारणा की भांति इतिहास का दर्शन भी उतना ही विरोधी है । दोनों के संबंध में एक बात महत्वपूर्ण हैं कि दोनों ही निर्बुद तथ्यों को जोड़ने को प्रणाली को स्वीकार करते है और तथ्य उपलब्ध न होने पर उसे छोड देते हैं । जब कभी तर्कपूर्ण विचार उपलब्ध नहीं होता तो उस रिक्त स्थान की पूर्ति भावना के विकास से होती है । उक्त भावना काव्य के रूप में होती। इतिहास का दर्शन काव्यात्मक प्रकृति का स्पष्ट प्रमाण हैं । प्राचीन इतिहास में हमें सुर तथा असुरों के अध्ययन का उचित मार्गदर्शन मिलता है । अर्थात वेदों में देवताओं और असुरों के युद्धों का वर्णन है । इनमें देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक मंत्रों का उल्लेख किया गया है । वास्तव में कविता किसी भी तथ्य की वास्तविक प्रतिलिपि न होकर कल्पना की उडान मात्र है । जिन्हें प्रमाणित करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती । लेकिन इतिहास की दृष्टि से ये कल्पनाएं व मान्यताएं विचार–विज्ञान और मिथ के रूप में प्रस्तुत हुए हैं । इस प्रकार इतिहास की नियतिवादी अवधारणा पहले इतिहास दर्शन को जन्म देते हैं तदुपरान्त उसकी प्रबल विरोधी बन जाती है । यह उद्देश्यों की अपेक्षा कारणात्मक सम्पर्कों कल्पना की अपेक्षा पर्यवेक्षण और मिथ की अपेक्षा तथ्य पर जोर देती हैं । नियतिवाद और इतिहास दर्शन के मध्य उत्पन्न विवाद को दूर करने या बचने के सुझाव दिया जाता है कि विचारों को दार्शनिकों के लिए तथा निर्बुद्ध तथ्यों को इतिहासकारों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए । तथ्य को वास्तविक तभी माना जाए जब यह स्पष्ट हो जाए कि तथ्य क्या हैं और कैसा है?

23.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) कारण और इतिहासकार के संबंधों की व्याख्या कीजिये ।

(ii) परिस्थितियां कारणों को जन्म देती है, व्याख्या करो ।

(iii) वास्तविक तथा आधार मत कारण क्या है ।

(iv) इतिहास में संयोग क्या है? आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए ।

(v) इतिहास में नियतिवाद की व्याख्या कीजिये ।

23.12 संदर्भ ग्रंथ

1. आर. जी. कालिंग मूड : द आइडिया ऑफ हिस्ट्री (अंग्रेजी) आक्सफोर्ड यूनिवर्सटी प्रेस 1956
2. ई. एच. कार : व्हाट इज हिस्ट्री (अंग्रेजी) पेन राइन बुक्स 1972
3. ई. एच. डान्स : इतिहास एक प्रवचना, पूर्वाग्रह परीक्षण (हिन्दी) हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ
4. लार्ड एक्टन : लैक्चर ऑन मार्डन हिस्ट्र 1960 लन्दन
5. आई. बर्लिन : हिस्टोरिकल इन एविटबिलिटी (अंग्रेजी) आक्सफोर्ड (1954)
6. जी. जे. रेनियर : हिस्ट्री, इट्स परपज एण्ड मैथड (अंग्रेजी) बोस्टन (1950)

7. डब्लू. एच. वाल्श: एन इंटरोड़कसन टू द फिलोसोफी ऑफ हिस्ट्री – लन्दन 1951
8. आरनोल्ड जे. टायम्बी : ए. स्टेडीज ऑफ हिस्ट्री
9. एफ. स्टर्न : द वेराइटीज ऑफ हिस्ट्री फोम वाल्टैयर टू द प्रजेन्ट न्यूयार्क (1956)
10. लाल बहादुर शर्मा : इतिहास के बारे में, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली (1988)
11. बुद्ध प्रकाश : इतिहास दर्शन, हिन्दी समिति, लखनऊ (1968)
12. गोविन्द चन्द पाण्डे : इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (1986)

MAHI-04/ISBN13/978-81-8496-263-5